बंद घड़ी की मौत



गुरदीप सोहल

बंद घड़ी की मौत

गुरदीप सोहल



Blue Hill Publications Pvt. Ltd.

#301, Yogshila Sahusadan, Road No. 4,

Sri K.V. Colony, Saichak,

Beur, Patna, Bihar.

Pincode —800002

First edition published by – Kalpana

Second edition published by – Bluehill Publications

All rights reserved

Website: www.bluehillpublications.in

Mob.: +91-79030-80600

ISBN: 978-93-90788-84-2

This book is sold subject to the condition that it shall not by way of trade or otherwise, be lent, resold, hired out, circulated, and no reproduction in any form, in whole or in part (except for brief quotations in critical articles or reviews) may be made without written permission of the publishers.



गुरदीप सोहल

जन्म : 25 सितम्बर 1959 (गावं महमदपुर)

रानियां जिला सिरसा (हरयाणा)

शिक्षा : प्रथम वर्ष वाणिज्य

उपलब्धियां : कुछ रचनाएं विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित

और कुछ आकाशवाणी द्वारा समय- समय पर प्रसारित ! यह पहली पुस्तक !

सम्प्रति : राजकीय सेवा

लोक निर्माण विभाग हनुमानगढ़ संगम

संपर्क : 148 , सेक्टर 12 / एल

हनुमानगढ़ संगम - 335512

श्री गुरदीप सोहल का यह पहला कहानी संग्रह है ! उनकी लेखनी की नोख तीखी है ! कथनी में पैनापन है ! आंठो कहानियों में वो जो कुछ कह गए हैं, वह सब हमारे चारो ओर बिखरी हुई वे बाते हैं, जिन्हे हम एक अरसे से जानते हैं ! लेकिन सोहल के कथ्य में नयापन है ! वे हमे एक अलग ही दृष्टिकोण से सोचने के लिए विवश करते हैं !

शिल्प उनका अनूठा है, जो हमारी भीतरी तहो में उनकी अपनी पहचान छोड़ता है ! बात तो सभी कह सकते हैं,लेकिन प्रत्येक का कहने का अपना तरीका होता है ! सोहल का तरीका इसलिए अपनी छाप छोड़ता है की, उनका अंदाजे बयां ही अलग किस्म का है !

अपनी वयस्क उम्र में विचारों की प्रौढ़ता,विविध विषयो की गहन जानकारी और गहराई से कुछ मोती चुन लाने का साहस, सभी कहानियो में परिलछित होता है !

ये कहनियाँ हमे कचोटती है,उद्देलित करती है और कुछ करने को प्रेरित करती है ! सोहल केवल हमे मनोरंजन प्रदान नहीं करते, दिशा प्रदान करते हैं ! ब्रहमित समाज को दर्पण दिखते हैं ! कुत्सित व भयावह चेहरा !

मुझे उम्मीद है की, वे यदि इस पहले कदम की तरह हो अपने अगले कदम भी रखते रहेंगे तो एक दिन चोटी के कथाकारों में अगरगाध्य होंगे !

कृष्णकुमार कौशिक

कल्पनालोक

हनुमानगढ़ टाउन-335513

अनुकर्म

रोबोट

सुनहरी खिड़कियां

बंद घडी की मौत

रिश्ते खो गए

मेरी बहन है वो

सांझी बट

पिंजरे का पिंजरे का पन्छी

मम्मी ! खाना दो

मैं समय भी हूं।

लेखक भी महादेव होता है जो सदैव अपने विलक्षण ज्ञान की तीसरी आंख भी खुली रखता है, समय की नदी में बहता है, अच्छे–बुरे समय के अनुकूल या प्रतिकूल डूबता या तैरता है, लहरों के थपेड़े भी सहन करता है, जिंदगी की नाव खेता है, बच जाता है या कभी कभी डूब भी जाता है। महसूस करता है और लिखता है, उसी लिखी गई किसी भी रचना को पाठकों तक पंहुचाने की कोशिश भी करता है। जैसे ही उसके सामने कोई भी समस्या आन खड़ी होती है तो उसे झट से बगुले भगत की तरह झपट लेता है और कहानी करता है।

मैं एक मां भी हूं, लेखक के वेश में कहानियों रुपी आठ शिशुओं की। वैसे तो कहानी करना भी एक स्वस्थ शिशु को कोख में अनुभव–रुपी रक्त से सींच कर जन्म देने के समान ही है ठीक वैसे ही जैसे कि करोड़ों शुक्राणुओं में से कोई एक शक्तिशाली शुक्राणु अण्डे को भेद कर निषेचित कर जाता है, सशक्त विचार की तरह। लेखक की कोख–रुपी मस्तिष्क में एक ही समय में कई कहानियों के विचार या प्लाॅट्स असंख्य शुक्राणुओं की तरह ही

विचरण करते रहते हैं, समय आने पर या बड़ी या ज्वलंत समस्या का कथानक सूझने पर कोई एक सशक्त विचार स्थापित होकर जड़ पकड़ लेता है, पनपता है और समय आने पर कहानी के रुप में साहित्य में आता है, जन्म लेता है, पन्नों पर फैलता चला जाता है। बाकी के कमजोर और अन्य विचार या तो एक बार बचे हुए शुक्राणुओं की तरह नष्ट हो जाते हैं या फिर तुलनात्मक रुप से उनका महत्व कम होने के कारण गौण हो जाते हैं। कुछ समय के लिए भुला दिये जाते हैं या फिर नये सिरे से नये और सशक्त विचार के रुप में पुन: स्थापित होते रहते हैं। शिशुओं की तरह समय–समय पर कहानियों का जन्म होता रहता है। कहानी के जड़ पकड़ने, स्थापित होने, पनपने क्रमिक विकसित होकर जन्म लेने का कोई निश्चित समय नहीं होता। लेखक की योग्यता के अनुसार, वह एक दिन से लेकर एक वर्ष तक भी हो सकता है। हड़बड़ी में रची गई कहानी का परिणाम भी वही होता है जो लापरवाही से हुए गर्भपात का। कहानीकार भी एक मां की तरह ही कहानी के शिशु को मस्तिष्क की कोख में सुरक्षित रखने की कोशिश करता है, पनपने और विकसित

होने का पूरा–पूरा ख्याल रखता है ताकि वह बिना किसी समस्या के जन्म ले सके और साहित्य के जगत में आंख खोले, लम्बे लम्बे समय तक बना रहे।

मां की तरह मैंने भी एक–एक करके इन आठ कहानियों के शिशुओं–रोबोट, सुनहरी खिड़कियां, बंद घड़ी की मौत, रिश्ते खो गए, मेरी बहन है वो, सांझी बट्ट, पिंजरे का पंछी और मम्मी खाना दो–को जन्म दिया है जो मुझे जी जान से भी प्रिय हैं और हमेशा ही रहेंगे। मैंने भी इन सभी की प्रसव पीड़ा सामाजिक समस्याओं की तरह ही सहा है और स्थापित करके एक–एक करके जन्म दिया है। जैसे–जैसे एक के बाद एक शिशु का जन्म होता है, उनका आना जारी रहता है वैसे वैसे उन पर कुरबान किए जाने वाले प्यार, स्नेह, वात्सल्य की बौछारें तुलनात्मक रुप से कम हो जाती है लेकिन इन कहानियों के बारे में इसका विपरीत अर्थ है। लिखते जाने के क्रम में कहानियों का शिल्प, कथानक, शैली आदि सब कुछ परिपक्व होता चला जाता है, पैनापन आता है। ये सब शिशु मुझे एक दूजे से अधिक, जी–जान से भी प्रिय हैं। इन सब में एक से बढ़कर एक गुण हैं।

सब–के–सब तुलनात्मक रुप से एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं।

कहानी के स्थापित होने से लेकर जन्म तक मैं सब कुछ छुपा कर रखना चाहता हूं। इस मामले में किसी भी दूसरे कहानीकार की तरह मैं अधिक उतावलापन बरतना नहीं चाहता जैसे कि अक्सर जब एक ही मौहल्ले की घनिष्ठ महिलाएं एकत्रित होकर एक दूसरी की, किसी भी नवविवाहिता की फैमली प्रोग्रैस जानने की उत्सुकता रखती हैं, अगर कुछ नहीं होने की संभावना होती है तो क्यों? किस कारण? कोई अन्य स्थाई गर्भ निरोधक समाधान आदि और अगर कुछ होने की संभावना हो भी तो कब से? कितने समय से? कितने के बाद, कब तक चलेगा आदि। कहानीकार भी महिलाओं की तरह ही एक दूसरे से कथानकों के टोह लेकर, चुगलिओं की तरह विचारों का आदान–प्रदान कर, कथानकों पर झाड़ू फिराऊ कुचर्चा समीक्षा, बदले की भावना से कमजोर या बढ़िया कर, हल्कापन महसूस किया करते हैं लेकिन मैं ऐसा हरगिज नहीं करना चाहता। मैं केवल सम्पादक नाम के डाॅक्टर तक ही सीमित रखकर, प्रकाशित होने के बाद ही उजागर करना चाहता हूं।

कहानी के जन्म के पश्चात ही ढिंढोरा पीटना पसंद करता हूं। मैं नहीं चाहता कि किसी की बातों में आकर, अपने विचार के शिशु को कमजोर समझ कर अवांछित गर्भ की तरह निकालकर फैंक दूं और बार बार के गर्भपात से बांझपन को आमंत्रित करुं, पुकारुं। इसके विपरीत चाहे मैं लम्बे समय तक किसी भी कहानी को जन्म न दूं, ये केवल मेरी इच्छा पर ही निर्भर करता है। मैं विचार को स्थापित रहने दूं या गर्भपात करा दूं। ये केवल मेरा हक है।

अपनी कहानियों की समीक्षा करना मेरे लिए उतनी ही मुश्किल बात है जितनी कि दुनियांभर के बदमाश अपने बच्चों की बुराई करना, बाहर के लोगों के सामने उनकी पिटाई करना आदि। मां के लिए शिशु, कहानीकार के लिए कहानी, कहानी ही होती है। उसके कलेजे का टुकड़ा। चाहे वो पुत्र हो या पुत्री।

कहानियां चाहे देशी हों या विदेशी, यथार्थ से सीधा सम्बन्ध रखती हैं, समस्या बनकर सामने आती हैं, जीवन से दो दो हाथ करने की प्रेरणा देती हैं। सवाल उठाती हैं और जवाब भी दिलवाती हैं। इन्हीं से प्रेरित होकर मैंने भी मां बनने का फैसला किया है, परिणाम आपके हाथ में है। हाड़–मांस का नहीं बल्कि

कहानियों के रुप में बड़ी समस्याओं का है जो हमेशा अमर रहेगा। हाड़–मांस तो कभी भी समाप्त हो सकते हैं लेकिन ये चिरकाल तक पढ़े और समझे जायेंगे।

अन्त में मैं क्षमाप्रार्थी हूं उन सब जाने–अनजाने व्यक्तियों से जिनका कि उल्लेख इस पुस्तक में जाने या अनजाने तौर पर, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से करना पड़ा क्योंकि उनका किसी भी कहानी के किसी भी पात्र या घटना से सीधा या उल्टा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। कृपया वे सब इसे किसी भी प्रकार से अन्यथा न लें क्योंकि पात्रों और घटनाओं के बिना कहानी करना या अपनी बात कह पाना उतना ही मुश्किल काम है जितना कि किसी बात को सही सही समझ पाना। घटनाओं और पात्रों की रचना करना विवश्ता के बिना कुछ भी नहीं है क्योंकि पात्रों और घटनाओं के बिना कहानी का ताना–बाना ही नहीं बुना जा सकता, इसके बिना कहानी, कहानी नहीं होती केवल कल्पना मात्र होकर रह जाती है। पात्रों के बिना कहानी करना मुश्किल है क्योंकि

हमारी जिंदगी भी अपने आप में एक कहानी ही है और हम सब इसके अच्छे या बुरे पात्र।
आपके बहुमूल्य विचार जानने का अभिलाषी।

(गुरदीप सोहल)

1.रोबोट

दिसम्बर का सर्द महीना, प्रातःकाल लगभग सात बजे के आसपास का समय रहा होगा, कड़कती सर्दी के साथ-साथ बना कोहरा भी छाया हुआ था।

कांटेदार तार द्वारा घेरी गई खण्डहरनुमा दूर तक फैली हुई गेरूए रंग की उस इमारत का जालीदार गेट पार कर नत्थूसिंह ने दफतर से लगने वाले एक कमरे की बगल में साइकिल खडी की और अनमना सा कछुए की माफिक जेबों में समेटे हुए गर्म गर्म हाथ पांव बाहर निकालने लगा। मजबूरी थी, होनी भी चाहिए तभी तो इन्सान को कैसे कैसे स्थानों पर कई-कई प्रकार के काम करने जाना पड़ता है। मजबूरी हो भी क्यों न भई इस बेरोजगारी के युग में। वह कच्चा कर्मचारी जो था वहां का, पूर्णतया अंकालिक अस्थाई मीठे खरबूजे जैसा नरम नरम स्वभाव का जिसे जो भी जी चाहें मुंह में रख ले या अगर कड़वा भी होता तो उसे वातावरण को देखते हुए समय से पहले पक कर मीठा होना पड़ता वरना तो उसे अन्य पक्के कर्मचारियों की तरह कड़वे खरबूजे या हरी

मिर्च जैसा हो जाना चाहिए था परन्तु मरता क्या न करता। मीठा खरबूजा बनना पड़ा। उसे सैक्शन इंचार्ज मिस्टर प्रकाश शर्मा से हुआ पहला पहला इण्टरव्यू यानि प्रथम अनौपचारिक बातचीत अभी भी हूबहू याद थी, एक भी शब्द वह भूला नहीं था वह। मिस्टर शर्मा के तेज धार वाले चाकू जैसे वाक्य कितने पैने थे कोमल खरबूजे जैसे नत्थूसिंह के दिल को उन शब्दों ने किस प्रकार से काटा था। मिस्टर शर्मा में कितनी शर्म बाकी थी उसका हिसाब तो वह नहीं लगा पाया लेकिन उसकी बेशर्मी को हिसाब तो लगा ही सकता था। वह खुद तेज धार वाला चाकू नहीं बनना चाहता था क्योकि वही चाकू जब फल काटने के साथ साथ हाथ भी काटने लगे तो लोग या तो उसे बदल लेते है या फिर पत्थर पर घिस की उसकी धार मिटा कर काम में ले लेते हैं ताकि उससे केवल तरकारी या फल काटने जितना ही काम लिया जा सके जो भी स्वयं को चाकू की तरह बना लेना चाहते हैं वे लोग हमेशा ही नुकसान में रहते है, अन्य लोग उन लोगों को नकार दिया करते है क्योंकि फल या तरकारी काटना चाकू का काम है लोगों की आवश्यकता है मगर हाथ कट जाये तो दहशत। तेज

समझ कर उसे फैंक दिया जाता है या बदल लिया जाता है। निहायत ही बेशर्मी से शर्मा बोला था:-

अच्छी तरह सोच, विचार-विमर्श कर लेना बरखुरदार कि तुम केवल टाइप ही करना चाहते हो या सब कुछ। यहां सब कुछ से मेरा मतलब है वही सब कुछ जो भी, किसी भी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी द्वारा किया जाता है जैसे कि मेज कुर्सियों पर दो बार सूखा और गीला कपड़ा मारना, साफ करना, सजाना, पानी का घड़ा भरना, कर्मचारियों की ठण्डे-ठण्डे पानी से सेवा करना, फाइलें सही करने के साथ साथ अधिकारियों के चैम्बर्स तक छोड़ कर आना, डिस्पोजल होने पर वहां से वापस लाना, फिर अपने अपने ठिकाने पर रख देना आदि आदि। इस काम को मना करने से पूर्व अपने भविष्य में झांकने के साथ साथ परिवार घर में झांक लेना। कहीं ऐसा न हो दोस्त कि तुम्हारे चेहरे पर लगे बेरोजगारी के ठप्पे को देखकर परिवार के सदस्य तुम्हे भला बुरा कहें, मारपीट करें, गाली गलौच करें खाना परोसना बंद कर दें, तुम्हारी भूख प्यास को तुम्हारी नौकरी की तरह भूला दे, बिसार दें या रोटियों के साथ साथ बार बार तुम्हे याद दिलाते रहे कि अभी तक तुम

बेरोजगार क्यूं हो। जाने कब नौकरी पर लगोगे, कब तुम्हारी नौकरी लगेगी, कब तुम्हारी आमदनी का साधर बनेगा। पैसा आयेगा तो घर के कई काम सम्पन्न होंगे। कब तुम्हारी शादी होगी आदि आदि। तुम्हारी हालत रखवाली वाले कुत्ते जैसी हो जाए और तुम हर आने जाने वाले पर भोकते रहो। हर अखबार में नौकरी के विज्ञापन पर नजर रखों और आवेदन कर दो। तुम्हे रोज रोज धक्के मार-मार कर काम की तलाश में भेजते रहे और फिर परिस्थितियों से समझोता न कर पाने के कारण तुम्हे इसी दफतर में मेरी शरण में आना पड़े और कहना पड़े कि तुमने परिस्थितियों से समझौता करने का मन बना लिया है। तुम्हे मैं दफतर समय के अन्त तक यानि शाम 5 बजे तक ठीक से सोचने का समय देता हूं। ठीक से सोच कर, ठोक-बजाकर, ठण्डे दिमाग से विचार कर लेना कि तुम्हे यही दफतर पसन्द है तुम इसी दफतर में काम करना चाहते हो या कोई और। परिस्थितियों से तुम समझोता करने में कामयाब हो जाते हो या नहीं। परिस्थितियों को तुम अपना दास बना पाते हो या नहीं। तुम नाकाम रह जाते हो और परिस्थितियों का दास बन कर मेरे ही पास रह जाते

हो। यदि समझौता करते हो तो किस दफतर में और अगर नहीं करते हो तो क्यों और फिर परिस्थितियों से समझौत करना तो वैसे भी एक समझदार आदमी का काम है परन्तु जो परिस्थितियों से समझौता नहीं करते या कर नहीं पाते वे सब के सब मूर्ख होते है कभी भी कामयाब नहीं हो सकते। कामयाबी मृगतृष्णा की तरह उनको हमेशा ही धोखा देती रहती है क्योंकि परिस्थितियों से समझौता करके इन्सान हमेशा कुछ न कुछ तो सीखता ही रहता है। कुछ न कुछ तो ग्रहण ही करता है। जिंदगी की कच्ची-पक्की, सुखदायक और दुखदायी राहों पर अकेले चलते रहने का गुर भी तो सीख जाता है, अनुभव प्राप्त करने लगता है, वही सब कुछ उसके काम भी तो आता रहता है। जो आदमी मुकाबला नहीं करना चाहते या नहीं कर सकते उन्हे लोग कामचोर या कायर कहा करते है। युद्वाभ्यास किए बिना विजय कैसे प्राप्त कर सकते है। कर्म करने वाले लोग ही तो अनुभव प्राप्त करते है जो कुछ करेगा ही नही तो उसे अनुभव कैसे प्राप्त हो सकता है। वे जीवन में अनुभवहीन रह जाते है। कुछ नहीं कर सकते। खैर यह सब तो तुम्हारी मर्जी है। ये सब सोचना तो

तुम्हारा काम है। मेरा काम तो तुम्हे जीवन का दर्शन बताना है श्री कृष्ण ने कहा था कर्म किए जा फल की इच्छा मत कर रे इन्सान। ये है गीता का ज्ञान ये है गीता का ज्ञान। मेरा काम तो तुम्हे समझाना भर था। समझो या न समझो बाकी सब तुम्हारी समझ है। कभी तुम भी सोचना इस जिंदगी के बारे में और कर्म के बारे मे। जिस दिन समझ जाओगे जिंदगी का असली मजा आना शुरू हो जायेगा। एक बात और इतना सब कुछ सुनने के बाद तुम ना नहीं करोगे क्योंकि तुम मुझे मूर्ख नहीं लगते बहुत समझदार हो।

अकेले बैठे हुए मेज पर रखे हुए टेबल ग्लास में सहसा ही मनौति मानती, प्रार्थना करती, मंदिर की चौखट पर भगवान के आगे शीश नवाती, माथा रगड़ती, पूजा करती, आंसू बहाती नौकरी के लिए वर मांगती, नियुक्तिपत्र लाते हुए डाकिये का इंतजार करती, राह तकती मां की झुकी, वृद्ध और धुंधली आकृति उभर आई। वह भली भांति अच्छी तरह जानता था कि वहां पर चपरासी के काम से नकारना, जी चुराने, नाक का सवाल बनाने, अपनी योग्यता को बीच में लाने का मतलब होगा फिर से, घर से

कहीं न कहीं भेज दिया जाना। थोडी देर बाद शर्मा कहीं से आ टपका और कहने लगा।

कल दफतर में आकर उपस्थित होने का मतलब होगा, तुम्हे सब कुछ मंजूर है वरना मां के उलाहने, बाप के कटाक्ष-व्यंग्योक्तिया, श्लोक, छोटे छोटे भाई बहनों की गालियां सुनने को तैयार हो जाना होगा। इस इमारत की सीमा में घुसने से पहले ही तुम्हे जी जान से मान लेना होगा कि तुम अपने द्वारा सम्पादित किए जाने वाले टाइप कार्य के अतिरिक्त चपरासी भी हो। टाइपिस्ट के साथ साथ सब कुछ करना पडंेगा या वह सब कुछ भी करोगे जो भी मै या अधिकारी महोदय कहेंगे। कल यहां पर आने से पूर्व तुम्हे मान लेना होगा कि तुमने विपरीत परिस्थितियों से समझौता कर लिया है। समय बड़ा बलवान है। इसके आगे कोई भी टिक नहीं सकता। वक्त के दिन और रात, वक्त के कल और आज, वक्त की हर शय गुलाम, वक्ता का हर शय पे राज। किसी की भी नहीं चलती। इसके सामने हर आदमी कमजोर है, खिलोना है, कठपुतली है। सभी को झुकना पड़ता है, खेलना पड़ता है। तुम भी सबके साथ ही हो। किसी से भी अलग नहीं हो। आदमी

वक्त के साथ साथ हमेशा ही बदल जाता है लेकिन जो नहीं बदलता या जिसे बदला नहीं जा सकता वह केवल वक्त है। हमेशा आदमी को ही मजबूर कर देता है बदलने के लिए।

दुघर्टनाग्रस्त पोत टाइटैनिक की तरह नत्थूसिंह मनमानी के भंवर में उतरता ही चला जा रहा था। डूबने के अतिरिक्त उसके पास कोई अन्य चारा बाकी नहीं बचा था। अन्य विकल्प भी नहीं था, होता भी तो क्या कर सकता था बेचारा। उसे तो ठण्डी बर्फ के किसी न किसी पहाड से टकरा कहीं न कहीं तो डूबना ही था। यहां क्या और वहां क्या। समन्दर में नंहीं तो नदी में ही सही। डूबेगा तभी तो थोडे-थोडे हाथ-पैर मारना ही सीख जायेगा। हाथ पैरों का उपयोग करके तैरना तो सीखेगा कम से कम। डूबेगा नहीं तो तैरना कैसे सीखेगा। तैरना सीख लेगा तो कभी न कभी तो डूबते हुओं के काम आयेगा और उन्हे बचा पायेगा। उसकी नियति जाल में फंसी हुई हिरणी की सी हो गई थी और दूसरी सुबह खुद ही िशकारियों की खुराक बनने चला आया। मजबूरी जो थी वरना सर्दी में उसका जी कितना दुख पा रहा था किसे क्या पता भला। सर्दी में चल रहे नाक को

भी ढंग से साफ करने की हिम्मत नहीं हो रही थी। सुबह सुबह दफतर खोलने के काम से लेकर शाम ढले दफतर बन्द करने तक को उसकी ड्यूटी का नाम दे दिया गया था। बड़ी मुश्किल से उसने कमरे के दरवाजे में लगे ताले में चाबी लगाई, ताला खोलकर फिर सिटकनी में लगाया, दरवाजा खोला। रात भर से बंद पडे हुए कमरे में से गर्म हवा का बदबूदार झोंका ज्योंकि उसके नथुनों से टकराया त्यों ही उसके मुख से उन सभी स्थाई कर्मचारियों के प्रति भद्दी सी गाली निकली थी, होठों पर गालियां आ जाना स्वाभाविक ही था क्योंकि एक तो वह जो नहीं करना चाहता था लेकिन वहीं कर रहा था। दूसरें कई बार गालियां देना भी स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है, तनाव दूर होता है, संतुष्टि होती है। जब गाली देने से दिल का तसल्ली मिले, दिमाग को आराम मिले, जब जी खुश हो जाये तो तो जब जी चाहे जी भर कर गालियां निकालनी चाहिये। शायद नत्थूसिंह का तनाव भी गाली देने से थोडा थोडा करके दूर होता जा रहा होगा।

सुबह के लगभग साढे सात बजे का समय रहा होगा। आसानी से कुछ भी दिखाई दिये जाने जितनी

रोशनी नहीं हुई थी। दिसम्बर के घने कोहरे ने कुलफी जमाकर बदन को अकड़ा सा दिया था। कोहरा इतना ज्यादा छाया हुआ था कि सामने 15-20 फुट दूर बरामदे के अन्य कमरे भी नजर ही नहीं आ रहे थे। आंखें खोलते ही कोहरा पलकों पर जमता जाता था। संकट में भी हाथ पांव समेटे रखने का ही जी करता था। चिमनी के अभाव में वह इमारत पूर्णतया ईट भट्ठा जैसी ही नजर आती थी जहां पर नत्थूसिंह जैसे कई मजदूर काम करते थे और वहां पर ईट भट्ठो की बजाय कच्ची-पक्की यानि लिखित और मौखिक गालियों का उत्पादन होता ही रहता था। पक्की ईटों, कच्ची ईटों और पिल्ली ईटों की तरह जिनकी कोई कीमत नहीं थी, कोई हिसाब नहीं था। नत्थूसिंह को हर कर्मचारी/अधिकारी हर छोटे बड़े काम के साथ-साथ कच्ची और पिल्ली ईटों की तरह गालियां देता था। कभी कभी पक्की ईटों की तरह गलियां भी मिल जाती थी बदले में उसके मन में उन सब कर्मचारियों के प्रति घृणा की टाइमप्रूफ इमारत बनती रहती थी। मन ही मन और बात बात पर पक्की गाली देना भी नत्थूसिंह के अन्य कामों में शामिल हो चुका था। कमरे के दरवाजे खोल कर

कुछ पल गर्म निकलने का इन्तजार करने लगा। साफ हवा आने के लिए पंखा चला कर बन्द किया, बत्तियां जलाई, खिडकियों के पट खोल डाले। सफाई किए जाने वाले फर्नीचर की हालत देखने लायक थी। दैनिक सफाई के बावजूद भी सब पर रेत की पर्तें जम जाती थी। उसकी निगाहें मेज-कुर्सियों का जायजा लेती हुई फाइलों के रैक, अलमारियों, संदूकों और अन्य सभी वस्तुओं पर सरक सरक कर फिसलती रहीं। चारों तरफ ही थार का रेगिस्तान, गंदगी का साम्राज्य फैला हुआ था। कुछ देर यूंही खड़ रहने के बाद कोई बेकार कपडा खोजने का उपक्रम करने लगा जो सफाई के काम में लाया जा सके। कपड़ा हाथ में आते ही सफाई करने में मसरूफ हो गया। मेज-कुर्सियां साफ की, कलमदान, कागजपत्र-फाइलें सब कुछ ठीक किया। मेजपोश सलीके से बिछाये, कुर्सिया व्यवस्थित कीं। संदूक साफ कर उस दिन का अंतिम काम, पानी का घड़ा भरने चल पड़ा। सर्दी के मौसम में उपभोग कम होनेे के कारण रोज रोज ही पानी यूं ही बहा दिया जाता लेकिन घड़ा भरने का क्रम या नियम नहीं बदल पाया। सर्दी में प्यास कभी कभी या बहुत कम

लगना व पानी का बर्फ जैसा ठण्डा होना भी हा सकता है। फिर भी कुछ कर्मचारी ऐसे भी थे जो रात में रम का उपभोग अधिक करने के कारण दफतर में आते ही सुबह सुबह पानी पीने का आदेश जारी करते रहते थे। सैनिक अनुशासन की तरह हर रोज हर काम सम्पादित करना भी आवश्यक था और फिर पानी बदलने मात्र को ड्यूटी का हिस्सा बनाया गया था। अपने घर की याद को भुलाने के लिए जो सैनिक रातों को अत्यधिक रम का सेवन करते थे वे ही प्रातः दफतर में बैठकर हर वक्त बर्फ जैसा ठण्डा पानी पी पीकर शराब से जलाये हुए कलेजे की आग को बुझाया करते थे, मगर ऐसा रोज रोज नहीं होता था। कभी-कभी पार्टियों मेंे ऐसा होता था। तबादले पर जाने वाले कर्मचारियों के सम्मान में। तब अगले दिन रोज ही भरा जाने वाला पानी का घड़ा वीरगति को प्राप्त हुआ करता था। सैनिक आवास(बैरेक्स) और दफतर साथ साथ होने के कारण रातों को भी काम और पीने पिलाने का दौर चलता रहता था। महफिलें जमा करती थी। गाना-बजाना होता था। शेर-ओ-शायरी होती थी। खाना खजाना होता था। तब अधिकारी और कर्मचारी अपनी अपनी पद प्रतिष्ठा

को भुलाकर एक परिवार के सदस्यों की तरह साथ साथ मिल बैठ कर खाते पीते थे, जिंदगी का असली मजा लेते थे। उस समय उन सबमें अधिकारी या कर्मचारी जैसा भेदभाव नहीं होता था, किसी भी प्रकार की अहम की भावना या नाक के सवाल की दीवार नहीं होती थी। रात में होने वाली पार्टियों में सब समान होते थे एक परिवार के सदस्य। शेर और बकरी (टाइगर और लैम्ब) एक ही गिलास से एक ही बोतल की दारू पीकर जश्न मनाते थे, अगले दिन एक ही मटके का पानी पीते थे, एक साथ बैठ कर एक ही मेज पर खाना खाते थे।

एक हाथ में घड़ा, दूसरे में चप्पन उठाकर 10 कदम की दूरी पर लगे हुए नल की तरफ बढ़ गया। बर्फीला पानी कुलफी जमाये जा रहा था। कल-कल की ध्वनि से पानी भरने लगा। उसे याद आने लगा कि जब वह उस सैनिक दफतर में नया नया आया था। कर्मचारियों के साथ साथ अधिकारियों को भी उसकी कितनी आवश्यकता थी। वहां का कोई न कोई कर्मचारी हमेशा छुटटी मंजूर करवा कर घर जाने की ताक में ही रहता था, किसी न किसी बहाने से तार मंगवाकर अवकाश स्वीकृत करवाने को तैयार

ही रहता था। कोई पास, कोई दूर, किसी का कोई न कोई बीमार होता तो किसी न किसी के दूर-पास के सम्बन्धी के देहान्त, कोई मां या बाप की मौत के बहाने से घर चला जाता। कोई सालाना छुटटी पर जा रहा होता तो कोई आकस्मिक अवकाश पर। किसी के घर से दुख का तार आ जाता और किसी के घर से शादी-ब्याह का न्यौता। ऐसे में छुटटी पर घर गये हुए उन सब कर्मचारियों का काम देखने के लिए कच्ची और गीली मिटटी जैसे कर्मचारी नत्थूसिंह की हमेशा ही आवश्यकता रहती थी जो हमेशा पांचवा टायर बन कर इधर उधर फिट किया जा सके। उन सबका काम देखने के लिए नत्थूसिंह को भी समझौता करना ही पड़ा था, दिल को तसल्ली देनी पड़ी कि मस्टर रोल के कर्मचारी को यह सब कुछ तो सहन करना ही पड़ता है, इसके बिना कहीं भी गुजारा नहीं होता। सैनिक दफतर के अधिकारी एवं कर्मचारी रोज रोज सावन में बिरहन की तरह बाट जोहते, राह तकते, आंखे बिछाते, श्रीराम की राजी खुशी की सूचना देने के लिए माता कौशल्या तरह कोए की चोंच सोने की मढ़ाने का वादा करते मगर जिस मेहमान रूपी कर्मचारी का आना वे पसन्द

करते थे वह कभी भी आता हुआ दिखाई न देता था। चौबारों पर काले कोवे तो कांव कांव करते मगर टाइपिस्ट रूपी मेहमान कभी नहीं आता था। थक हार कर बेचारे उस मेहमान की आने की आस अगले दिन पर, भगवान के हाथ, किस्मत के भरोसे छोड देते और एक दिन संयोग से भगवान ने उन सब की दयनीय हालत देख ली प्रार्थना सुन ली, नत्थूसिंह उन सब के बीच में जा पहुंचा। साक्षात्कार या यूं कहिए कि बलात्कार हुआ, स्पीड टैस्ट लिया गया अन्य औपचारिकताओं का पूर्ण कर उसका नाम मस्टर रोल पर चढ़ा दिया गया, काम दे दिया गया।

नई नवेली दुल्हन की तरह दफतर रूपी ससुराल में शर्मीला सा काम में व्यस्त रहता। एक रोज सैक्शन इंचार्ज मिस्टर शर्मा उससे बोला और कह रहा था:-

नत्थू सिंह थोड़ी देर पहले आ जाया करो यार। हमारे कमरे का अर्दली कल से सालाना छुट्टी पर जा रहा है। उससे पहले भी एक और जा चुका है। इन दोनो के वापस आने का कोई अन्दाजा नहीं है। दोनो के चले जाने से हमारे सैक्शन का काम कितने

दिनों से खराब हो रहा है। देखो तो धूल-ही-धूल जमी रहती है इन मेज कुर्सियों पर। इन्हे ठीक से झाड़-पौंछ ही दिया करों यार। किसी दूसरे की ड्यूटी लगा दी गई होती तो शायद तुम्हे कहना ही नहीं पड़ता। वैसे भी मैंने अधिकारी महोदय को इस समस्या के बारे में अवगत करवा दिया है। तुम्हे कहने की जरूरत ही नहीं होती अगर हमारे कमरे के लिए एक आदमी रिजर्व में होता। वैसे भी, बैठने से पहले जानवर भी अपने चारों तरफ पूंछ मार लिया करते है। हम तो फिर भी इन्सान है। भगवान द्वारा बनाये गये जीवों की सर्वोतम योनि में हमारा नाम आता है। जानवरों से 100 गुना अच्छे, हम दिल और दिमाग का उपयोग करते है। देश के सक्रिय नागरिकों में से है।

बात गांठ बांध कर वह रोज रोज 15 मिनिट पहले आने लग गया। ठण्डे दिमाग से सोच कर जान पाया कि जानवरों का माध्यम बनाकर चतुराई बरती जा रही थी, किसी दूसरे के कंधे पर रखकर बन्दूक चलाई जा रही थी, बंदूक के वजन का दर्द किस को हो रहा था समझ से बाहर था। बन्दूक शायद उन कर्मचारियों के कंधों पर रखी जा रही थी जो या तो छुट्टी पर चले गये थे या जाना चाह रहे थे। किसी

दूसरे का सहारा भी लिया जा रहा था, उसके मन और स्वाभिमान के खिलाफ काम करवाने के तरीको में से वह भी एक था।

कुछ दिन बाद शर्मा ने पहले वाले काम को करवाने के लिये सौरी फील किया उसका धन्यवाद दिया। दुबारा फिर से कहता चला गया:-

द ेखो तो यार नत्थूसिंह। पानी की कितनी दिक्कत आ जाती है। हमारे अर्दली भी लम्बी छुट्टियों पर जा चुके है। पानी पीने के लिए हमें दूसरों के कमरों में इधर-उधर जाना पड़ता है। हमारा ये छोटा सा घड़ा अगर भरा रहे तो हमें किसी दूसरे के कमरे या कहीं ओर नहीं जाना पड़ेगा। वैसे भी कभी हमारा कोई गैस्ट आ जाये तो हम उसे कम से कम ठण्डा पानी ही तो पिला सकते है। इसके सिवा हमारे पास उसे पिलाने के अतिरिक्त कोई और चारा भी तो नहीं है। यहां पर खाने पीने का सब सामान समय समय पर आता है और गैस्ट के आने का कोई समय तय नहीं होता। मेहमान और मौत का कोई समय नहीं होता। बेवक्त आये हुए मेहमान को हम पानी के अलावा पिला भी क्या सकते है। पानी पिलाने के सिवा हमारे पास कोई और सोफट डिंक

भी तो नहीं है। लंगर से चाय हम हमेशा नहीं मंगवा सकते। चाय तो अपने तय समय पर ही आती है।

अगले दिन से सुराही व घड़ा भी भरा जाने लगा। मौसम बदलने के साथ साथ धीरे धीरे सुराही और छोटे छोटे घड़ों का स्थान बडे मटके ने ले लिया। नित्यप्रति ताजा जल भरा जाने लगा। घड़ा भर जाने का आभास उसे तब हुआ जब पानी छलक कर नीचे गिरा, बूटों पर गिर कर जुराबों को भी गीला कर गया। जुराबों में भरकर पांव ठण्डे कर गया। घड़ा उठाकर, ले जा कर यथास्थान रखा। टाइपराइटर संभालने लगा। जिस हैसियत से उसे वहां रखा गया था वह पूर्णतया लोपित हो चुकी थी। माइनस तापक्रम के अण्टार्कटिका की ठोस बर्फ से पिघलकर वही धीरे धीरे पानी की तरह हो गया। कोई भी जब चाहे जिस में चाहे भरकर पी ले। शत प्रतिशत गुलाम होकर रह गया था। वेतन के सम्मोहन में यंत्रमानव बनता जा रहा था। सील गाय की तरह व प्रत्येक भेदभाव पूर्ण आदेश भी मानता जा रहा था। चाहता तो अन्य स्थाई कर्मचारियों की तरह सांड के से सींग भी मार देता, जमींन दिखा देता। कईयों का घायल भी कर देता लेकिन करता क्या। कच्चा कर्मचारी

होने के कारण उसके सींग नाम की चीज ही नहीं थी, कर्मचारियों ने सींग उगने ही नहीं दिये थे। मजबूरी ही ऐसी थी। ठीक किसी कैदी की तरह वह उस दफतर में से आजाद होने की कोिशश करने लगा, छूटने का इंतजार करने लगा मगर यहीं इंतजार तो खतरनाक होता है, बेकरार होता है। बेदर्द होता है। इंतजार ही करवाता रहता है।

काम करते करते वह यही सब कुछ सीख और समझ पाया कि जो भी किसी को जितना खुष करने की कोिशश करता है उसे उतना ही कष्ट, बोझ, डांट फटकार सब कुछ सुनने, सहने करने का आदी हो जाना पड़ता है। नत्थूसिंह ने भी बिना सोचे, समझे, बिना विचारे हर वक्त में हर कर्मचारी के साथ हां में हां ही मिलाई थी, हर काम करने की इच्छा जाहिर की थी, किसी के भी द्वारा, कभी भी, कैसा-जैसा भी उसे करने को कहा जाता था वह बेहिचक वैसे ही सब कुछ करता आया था। एक बार भी उसने इनकार नहीं किया था। किसी भी काम को सम्पादित करने से मना नहीं किया था। वह गधे की तरह काम के बोझ से दबकर रह गया था। परिणामस्वरूप उसे वह सब कुछ समझ में आ रहा

था जो किसी कर्मचारी को इनकार करने या पूरी उम्र काम करने के बाद भी समझ में नहीं आया था, पता नहीं चला था। कइयों को यह बात पूरी नौकरी कर लेने के बाद भी समझ में नहीं आती और अगर आ भी जाती तो कुछ प्रतिशत या कई बार लोग इसे पूरी जिंदगी खपा देने के बाद भी नहीं समझ पाते। बहुत की कम आयु में समझौता करके वह सब कुछ जान गया, सीख गया। धूप में बाल सफेद होने की कहावत को उसने अपने अनुभव के आधार पर गलत सिद्ध कर दिया। नवजात बछड़े और नवनियुक्त कर्मचारी में भी ज्यादा फर्क नहीं होता ज्यों ज्यों बछड़े की आयु बढ़ती जाती है त्यों त्यों उस पर हल चलाने की, कोल्हू पेरने की, बैलगाड़ी खींचने की जिम्मेवारियां बढ़ती जाती है। ठीक उसी प्रकार से जब जब कर्मचारी का सेवाकाल बढ़ता चला जाता है, पदोन्नति होती जाती है, रूतबा बढ़ता जाता है वैसे वैसे उसकी जिम्मेवारियां भी बढती जाती है। बछड़ा बड़ा होकर बैल में और कर्मचारी सीनियर होकर सैक्षन अधिकारी या राजपत्रित अधिकारियों में परिवर्तित होते चले जाते है। समय के साथ साथ बढ़ती हुई उम्र लेकर बछड़ बैल का रूप धारण कर

खेत में हल खींचने में जुट जाता है, कोल्हू के जुए में बंध जाता है। अधिकारी दफतर में फाइलों के ढेर के पीछे छुप जाता है। दबकर रह जाता है।

आहिस्ता आहिस्ता वह टाइपिस्ट से चपरासी में बदल गया। उस प्रातः के सब काम निपटाने के पश्चात सबसे बड़ा काम था साफ किए हुए कमरों को गर्म करना, एक दिन पहले की स्टोर में से कोयला लेकर अंगीठी भर कर रख छोडी थी, बेकार कागज लेकर, अंगीठी सुलगा कर वापस ले आया। दस बजे चाय की व्हिसिल लगी। ट्रे में से कप प्लेट निकाल कर धो कर साफ किए। अर्दली चाय देकर जाता रहा। जूते पालिश करने के काम से लेकर रात खाने के बाद थाली कटोरी साफ करने तक का काम सैनिक स्वयं की सम्पादित करते है। चाय पी कर उसने कप धोकर ट्रे में रख दिये।

रोबोट-सा वह, यंत्र-मानव सा, ऑटोमैटिक मशीनों की तरह सब कुछ सम्पादित करने लगा। रोज रोज का वही हाल था। दुबारा सुनने की उसने कभी भी आदत नहीं डाली थी। चाय के बाद उसने वहां काम करने वाले अन्य कर्मचारियों से मुलाकात की, मेल मिलाप किया, गुड मॉर्निंग की, हैलो की,

सत श्री अकाल की, नमस्कार की, राम-राम की, जय हिन्द की, असलामालेकम किया, सैल्यूट दिया, सबसे सबका हाल चाल पूछा।

टाइप करने के लिए उसने अभी मशीन संभाली ही थी कि अचानक अर्दली आ धमका, शायद मेजर साब, कैप्टन साब या किसी दूसरे अधिकारी ने बुलाया होगा। आकर बोला:-

सत श्री अकाल। बाबू।

सत श्री अकाल। उसने बिना सिर घुमाये ही उत्तर दिया।

बाबू। मेजर साब। अर्दली ने अपने आने का मकसद प्रकट किया।

नत्थूसिंह सब कुछ समझ गया। मात्र मेजर साब, कैप्टन साब, सूबेदार साब बोलकर अर्दली अपने आने का मतलब बता दिया करता है। उसे देखकर ही समझ जाना होता है कि कौन सी प्रजाति के बैल ने सींग मारना है।

ठीक है अभी चलते है।

हाथ में कागज को सलीके से मोड़कर, तह लगाकर ले जाते हुए वह मेजर साब के चैम्बर की तरफ चल दिया। कमरे में प्रविष्ट होते ही सैल्यूट

बजाया। मेजर साब कुछ पढ़ते हुए रूके, सिर उठाकर देखा और बोले:-

गुड मॉर्निंग जैण्टलमैन। तुम बहुत ही काबिल टाइपिस्ट हो, हम तुम्हारे काम को देखकर बहुत ही खुश हुए है। यू आर वैरी गुड टाइपिस्ट हैविंग कम्पलीट एक्यूरेसी। आइ एम वैरी प्लीज्ड टू सी योअर क्वालिटी ऑफ वर्क। बट यू हैव लैफट समथिंग, डोण्ट माइण्ड। इट डजनोट मैटर। इधर देखो बेटा। उकुछ टाइप होने से छूट गया है। कोई बात नहीं। इस लैटर को फिर से, इधर से ऐसा, री-टाइप करों। हां-हां बहुत सुंदर होना मांगता है। मेरा राइटिंग तो समझ में आता है न तुम्हारे। वैसे अब तो तुम काफी समझदार हो गया है। मेरा राइटिंग भी अच्छी तरह से समझने लगा है। न समझ में आये तो शर्मा साब से पूछ लेना। ऑवर टाइपिंग नहीं करने का, करैक्षन फलूड से बचों। ध्यान से टाइप करेगा तो स्पैलिंग मिस्टेक नहीं होगा।

मेहर साब ने हवा भर कर उसे गोल गप्पा बना दिया जिसे चटपटे पानी से भरकर साबुत ही खाया जा सकता है बिना निगले। मेजर साब भरपूर काम लेना चाहता था। अच्छा काम करने वालों को

थैंक्स देना, एप्रिशियेट करना उसकी दिनचर्या में शामिल था। नत्थू सिंह ने एक बात विशेषकर नोट कर ली थी कि मेजर साब स्थाई कर्मचारियों को दिन में छत्तीस बार डांट पिलाते थे, दिन भर किसी न किसी को किसी न किसी बात पर डांटने का अभियान चलता ही रहता था परन्तु उसे किसी भी बात पर कभी भी डांट नहीं पडी थी। मेजर साब उसके काम से कितना खुश होते थे इस बात का अनुमान तो वह खुद भी नहीं लगा पाया था लेकिन बार बार उसे द्वारा किए हुए काम की भूरि-भूरि प्रशंसा वे करते ही रहते थे। कोई भी उच्चाधिकारी वहां पर निरीक्षण के लिए आता तो वे अक्सर नत्थूसिंह की प्रशंसा भी करते कभी सालाना कार्यक्रमों में उसे सम्मानित भी किया जाता। कभी कभी उसका परिचय भी करवा देते। हमेशा प्यार से पेश आते। उसका कारण नत्थूसिंह का अस्थाईपन था या कुछ और उसकी समझ से बाहर था। उच्चाधिकारियों से हाथ मिलाकर अपनी प्रशंसा सुन कर वह भी फूला नहीं समाता था। मेजर साब के चैम्बर में भी यहीं सब कुछ पहले से ही चल रहा था। चैम्बर के दरवाजे पर जाते ही उसकी जान सूख गई थी। मेहर साब का पारा बहुत

ही गर्म था। नत्थूसिंह के चैम्बर में प्रवेश करते ही उन्होने अन्दर वाले कर्मचारी को तुरन्त बाहर निकाल दिया।

एक दिन मिस्टर प्रकाश शर्मा को मेजर साब ने बुलाया और बैठक की तैयारी हेतु मांगी सूचना टाइप करने के लिए दी। कुछ सामग्री लाते हुए वह नत्थूसिंह से बोला था:-

आज रात की गाड़ी से मेजर साब हैडक्वार्टर जायेंगे। कल कोई विशेष मीटिंग है। गुप्त सूचना है। उन्होने लिख दी है। ये लो, इन्हे आज शाम तक ही टाइप करना है। अभी से शुरू कर दो। काम काफी है और पता नहीं कितनी बार टाइप करना पडेंगा और कितनी बार बदल बदल कर मिलेगा। इसे मेजर साब को देने के बाद ही घर जाना है।

टाइप किए जाने वाले पन्नों का पुलिन्दा देखकर उसे 101 डिग्री बुखार सा आ गया। अचानक चक्कर जैसा दिमाग हो गया क्योंकि लोगों के जाने का, दफतर बन्द करने का समय दौड़ता हुआ सा आ रहा था। लगभग पौने पांच का समय रहा होगा। दफतर समय के बाद जो अफसर न बैठे वह असली अफसर नहीं, गीदड़ की सी चालाकी न करें लीडर

नहीं और जो बेकार न रहा हो वह स्टार (अभिनेता) नहीं। गाड़ी जाने का समय रात दस बजे का था। नत्थू सिंह टाइप करने के काम में तभी जुट गया था।

लगभग नौ बज कर तीस मिनिट पर वह काम निपटा कर घर जाने की तैयारी ही कर रहा था कि मेजर साब का अर्दली मीटिंग के पोस्टपोण्ड होने का दुखदायी समाचार देने चला आया। नत्थूसिंह ने सिर थाम लिया, मुर्गी जान से चली गई और खाने वाले को स्वाद न आया। न जाने इससे पहले कितनी ही बार मुर्गियां यूं ही हलाल होती रहीं थी, कितनी ही बार मीटिंग या तो कैंसिल हो जाया करती थी या फिर अनिश्चितकाल के लिए पोस्टपोण्ड हो गई थी। वही एक ऐसा कर्मचारी था जो हर बार किसी न किसी के लिए कभी मेजर साब के लिए, कभी कैप्टन साब के लिए कभी किसी के लिए मुर्गी की तरह हलाल होता चला आ रहा था। सारी मीटिंगों का मात्र एक साक्षी। उस बूचड़खाने में उसकी जान की कोई कीमत नहीं थी कोई कद्र नहीं थी। सबने उसे मुफत की मुर्गी बनाकर बार बार हलाल किया था लेकिन प्रशंसा के चक्कर में कई बार वह खुद ही हलाल

होता रहा था। घर की मुर्गी की तरह, मूंगी की दाल की तरह हमेशा ही बेस्वाद। वह दाल जो हमेशा ही बेस्वाद समझी जाती है और बेकार में फैंक दी जाती है।

थकावट की हालत में उसने साइकिल उठाई और राकेट की रफतार से घर की तरफ रवाना हो गया। उस कैद से वह जल्दी जल्दी निकल जाना चाहता था, अंतरिक्ष में जाने वाले राकेट की तरह दफतर के गुरूत्वार्कषण को पार कर वह निकल जाना चाहता था। उसके मन में डर बैठ गया था कि मेजर साब अर्दली को उसके पीछे भेज कर वापस न बुला लें कहीं। साइकिल को उसने राकेट बनाने की ठान ली थी लेकिन अंधेरी रात में दफतर उसे किसी प्रेतात्मा की तरह अपने पीछे आता हुआ दिखाई दे रहा था। बड़े बड़े खूनी पंजों के साथ कर्मचारी जिसके पैने और बड़े नुकीले दांत और अधिकारी जिसकी बड़ी भयानक लाल और डरावनी आंखे होती है। जिसकी खुराक अस्थाई कर्मचारियों का खून, सेहत और बेगार में गई हुई मेहनत होती है।

(राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर की मासिक पत्रिका मधुमती के अक्तूबर 1985 - युवा रचनाकार अंक में प्रकाशित पहली रचना।)

2.सुनहरी खिड़कियां

सुनहरी खिड़कियों की सुन्दरता धीरे धीरे समाप्ति की ओर बढ़ रही है, असलियत प्रकट होने लगी है दिन प्रतिदिन कुरूप पत्थरों की तरह। सोने की लंका की असलियत का पता लगने लगा है और कालापन छाने लगा है।

और अब तो यह लगने लगा है जैसे कि मेरे पागल होने के बुरे दिन आ रहे है। सारी की सारी समझ मिटटी के नीचे दब कर रह गई है। संकट काले विपरीत बुद्धि की कहावत जो कभी लागू नहीं हुई थी अब वही अप्रत्याशित रूप से लागू होकर सच होती हुई प्रतीत हो रही है। आजकल मेरा मन बहुत ही बेचैन और बेबस रहता है। बार बार बे-लगाम घोड़े की तरह दौड़ने लगता है, घण्टों दौड़ता ही रहता है। जब मन के मन में आता है तो हमेशा ही मनमानी करता रहता है। मन से दौड़ता है तो रास्ता नहीं देखता कच्चा-पक्का, अच्छा-बुरा। रास्ता नहीं देखता तो भटक जाता है। भटक भटक कर दिग्भ्रमित हो जाता है। दिग्भ्रमित होता है तो सोचता है, सोचता है तो महसूस करता है कि क्या सही है और क्या

गलत। कई बार तो दिमाग इतना अधिक पागल होकर खराब हो जाता है कि मेरा मन दौड़ दौड़ कर खूंटा उखाड़कर साथ ही ले भागना चाहता है। दौड़े भी क्यों न बेचारा? अक्सर बेचैन जो रहता है। फिर थक हार कर वापिस अपने खूंटे पर जाता है और कहावत सिद्ध कर देता है लौट के बुद्धु घर को आये।

आखिरकार इन्सान का दिल जब रोज रोज एक ही सूरत को देख-देख कर बोर हो जाता है, मन भर जाता है, अरमान मर जाते हैं तो दिल करता है कि वह अपनी पुरानी या भूतपूर्व अविवाहित अवस्था में आये और आजाद परिन्दे की तरह खुले आसमान में पहले की सी उन्मुक्त उड़ान भरे या अपनी सारी जंजीरों को तोड दे, सारे दायित्वों को त्याग दे, आजाद हो जाये और शादी के लड्डू के स्वाद को भुलाकर सन्यास लेकर, जंगल में जाकर मंगल योग में लीन हो जाये और सन्यास आश्रम से वानप्रस्थाश्रम तक का सफर करने के लिए सदा के लिए योगी हो जाये। गृहस्थी, भोगी या रोगी के चोले को फाड़कर उतार फैंके, घर की क्रांति को छोड़ दे और एकान्त में शान्ति की खोज कर और अपना ध्यान किसी भी

सूरत से हटा ले लेकिन यहां पर विवाह, गृहस्थाश्रम मोतीचूर का एक ऐसा लड्डू है जिसे खाने वाले तो पछताते ही है और न खाने वाले भी। न खाने वाले की जिज्ञासा बनी रहती है, वे स्वाद को ललचाते रहते है लेकिन खाने वाले कुनैन जैसे कड़वे स्वाद को जिंदगी भर नहीं भुला पाते। हर आदमी इसे खाने के लिए ही लालायित रहता है। इस लड्डू को खाकर ही पछताना चाहता है ताकि वह सीना ठोक कर कह सके कि उसने मीठे लड्डू खाकर देख लिया, शूगरप्रूफ कड़वा कुनैन जैसा स्वाद चख लिया लेकिन वह किसी अन्य के बताये हुए स्वाद पर विश्वास नहीं करना चाहता, वह नहीं चाहता कि कोई उसे लड्डू का स्वाद कड़वा बताकर गुमराह करे, वह खुद खाकर कड़वा स्वाद महसूस करना चाहता है कि इस लाजबाव लड्डू का स्वाद कितना लाभदायक है। विधानों में पराई स्त्री की तमन्ना करना एक पाप माना गया है। ऐसा बन्धन बनाया गया है कि न चाहते हुए भी इनसान कभी कभी ऐसा सोचने पर मजबूर हो जाता है जब उसे दूसरे की थाली का लड्डू अपेक्षाकृत ज्यादा बड़ा और स्वादिष्ट लगने लग जाता है। वह दुनिया का हर लड्डू खा लेना चाहता है लेकिन एक लड्डू के

बन्धन से छूट जाना चाहता है। जैसा कि इन दिनों में मेरे साथ भी हो रहा है।

उम्र के 65 बरस अभी तक मेरे सामने हिमालय पर्वत की तरह तन कर अडिग खड़े हुए है जिन्हें देखकर ही जान सूखने लगती है और उसे पार कर पाना तो दुनियां से किनारा करने के समान ही है। अभी से मुझे लगने लगा है कि एक ही खूंटे से बरसों से बंधे हुए मेरा हाल उस पालतू कुत्ते की तरह हो रहा है जो केवल दूर दूर से ही घर में आने जाने वालो को भौंक तो सकता है लेकिन काट नहीं सकता। काटने की ताकत नहीं जुटा पाता। काटने की उसकी अपनी अलग विवश्ता है। गले में कसकर बांधा हुआ गृहस्थी का, नैतिकता का सफेद पट्टा उसे इस बाबत आजादी नहीं देता और मालिक के मजबूत खूंटे पर बंधा रहने को मजबूर ही रहते हुए घर और जान-माल की रखवाली करते रहने की ड्यूटी याद दिलाता रहता है। उसे बार-बार मन मार कर बंधा रहना पड़ता है। संयोग से अगर कभी पट्टा खींच कर, तोड़ कर किसी को काटने, चाटने, प्यार जताने की हिम्मत कर भी लेता है तो दोनो की जान पर बन सकती है, दोनो में से एक के पागल हो जाने की संभावना

हमेशा ही बनी रहती है। सामने वाला हाइड्रोफोबिया का शिकार होकर जान से ही हाथ धो सकता है या फिर दोनो की जान चले जाने का खतरा बना रहता है।

वैवाहिक जीवन के 10 बरसों में जाने कितनी ही बार मैं यह महसूस कर चुका हूं कि लड्डू अगर न ही खाता तो कितना ही अच्छा होता। कम से कम दिल में इसे पाने और खाने की उत्सुकता और जिज्ञासा तो बनी रहती, तमन्ना बनी रहती। हलवाई की दुकान में रखे हुए इसे दूर-दूर से देखकर एक अदृष्य आकर्षण सा तो बना रहता। और फिर यदि मैंने इसे खा ही लिया है तो परिणाम से क्या डरना। समाज में रहना है तो लड्डू खाना ही पड़ेगा, लड्डू खाकर स्वाद चखना पड़ेगा चाहे जैसा भी हो मीठा या निवाकुनैन जैसा कड़वा। लड्डू खाने की सजा भुगतना भी तो हमारा परमधर्म है, कर्तव्य है। लड्डू खाना भी तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। उम्र भर इसी खूंटे पर बंधे औरों को ताक ताक कर भोंक भौक कर जी ललचाते रहना, पागल होते रहना है। काश, ये समाज न होता या फिर पट्टा न

होता। या दोनो ही न होते। फिर लड्डू खाते जाते और पछताते जाते।

वैसे भी यह तो उम्र का, जीवन का एक विवादास्पद विषय है कि कभी कभी रूठना होता है तो कभी कभी मनाना। और फिर यह तो वैवाहिक जीवन का एक अभिन्न अंग है इसके बिना वैवाहिक जीवन नीरस, बेकार, बेस्वाद, रसहीन हो सकता है। बिना मिर्च मसाले की सब्जी हो सकता है। कभी मिर्च कम तो कभी नमक ज्यादा। कभी कभी तो यह रूठना और मनाना इतना उग्र रूप धारण कर लेता है कि दिल विषाद, वितृष्णा से भर जाता है और मजबूर होकर बेचैन हो जाता है, नखरों से ओवरफलो हो जाता है। मन दौड़ने लगता है। दौड़ता ही रहता है। इसे मेरी कमजोरी समझिये या फिर मजबूरी कि मन कभी भी दौड़े बिना मानता ही नहीं। दौड़ लगाकर वापस वहीं आ जाता है जहां से चला था, दौड़ना शुरू किया था। मैं यह बात बिल्कुल अच्छी तरह से जानता हूं कि मन का इस तरह से दौड़ लगाना और वापस आ जाना बिल्कुल ही ठीक नहीं है। मन को दौड़ाने के बारे में सोचना एक पाप है। लेकिन कभी कभी जानबूझ कर भी पापी बनने का इच्छा होती

है, पाप करने को जी चाहता है। मन को दौड़ा दौड़ा कर मारने की इच्छा होती है। पाप की सजा भुगतने को मन हमेशा अपने आप को तैयार करने लग जाता है और समझने लगता है कि कभी न कभी तो यह सजा भुगतनी ही पड़ेगी जैसे कि सीमा पर सैनिक हमेशा लड़ने और मरने मारने को तैयार रहता है।

पिछले चार-पांच दिनों से मैं भी इसी दौर से गुजर रहा हूं। कभी कभार ये दौर आये इसमें से गुजरने में आनन्द आता है और तमन्ना भी रहती है कि जीवन में कभी कभी होली-दिवाली ऐसा दौर आ भी जाना चाहिए, रोज रोज हलवा खाने के साथ साथ भुजिया या टेस्टी भी का स्वाद भी लेते रहना चाहिए परन्तु अगर यह दौर रोज रोज भुजिये की तरह, अमावस की काली रात की तरह, बिना बुलाये मेहमान की तरह दिल के द्वार पर अ-तिथि दस्तक दे दे और उसे मन मार मार कर आमन्त्रण देना पड़े, इसमें से गुजरना पड़े तो मन को काबू में रखना मुश्किल हो जाता है। दिमाग खराब हो जाता है। मन बेचैन हो जाता है। इच्छाएं मर खप जाती है। दिल के अरमान आंसुओं में बह जाया करते है। जीवन एक उम्र कैद लगने लग जाता है, शरीर एक काल

कोठरी लगने लग जाता है जिंदा लाश के रूप में। शादी एक गुनाह लगने लग जाती है, एक ऐसा गुनाह जो किया तो जवानी में जाता है लेकिन सजा बुढ़ापे में मिलती है। सारी जिंदगी तारीख पे तारीख के चक्कर में निकल जाती है लेकिन फैसला कभी हो ही नहीं पाता।

बीवी की अदालत में कभी भी खत्म न होन वाला मुकद्दमा चलता रहता है। हमेशा ही एक्सपार्टी फैसला होता है। उम्र कैद की सजा होती है। घर एक काल कोठरी, कैद खाना, जेल और बच्चे उसके सजग प्रहरी होते है जो कैमरे की तरह पल की खबर कमैंण्ट्री की तरह बीवी तक पहुंचाने का काम करते रहते है। यहां तक कि कभी कभी खुदकुशी करने तक की इच्छा भी होने लगती है या फिर घर से भाग जाने का मन बनने लगता है। जीवन के सब बन्धन तोड़ देने को उतारू होना पड़ता है लेकिन वास्तविक जीवन में ऐसा हो ही नहीं पाता क्योंकि बीवी हमेशा ही किसी सब इंस्पैक्टर की तरह बच्चों की टीम के साथ गृहस्थी की गाड़ी में पीछा करती हुई घर की उम्र कैद में वापस खींचती हुई नजर आ

जाती है और वह रिश्ता एक बार फिर फांसी का फन्दा बन कर रहा जाता है।

रात के लगभग 10 बजे का समय हो चुका है।ं मौसम ठीक ठाक सा ही है। न ठण्डा है और न ही गर्म। बिल्कुल गुनगुने पानी जैसा। रजाई में गर्मी लगती है और कम्बल में सर्दी। रजाई ओढ़ने की इच्छा नहीं होती और कम्बल छोड़ने की हिम्मत भी नहीं हो रही है। कमरे में जीरो वाट का बल्ब जगमगा रहा है। डबल बैड पर हम दोनो अगल अगल दिशाओं में मुहं करके लेटे हुए है। वन्दना मेरी तरफ पीठ करके लेटी हुई है। उसका पीठ करके लेटना उसकी किसी भयानक नाराजगी को प्रकट कर रहा है जो कि अभी तक मेरी समझ से बाहर ही है। मौसम गुनगुना है लेकिन रिश्तों के मौसम का अनुमान लगा पाना भी मुश्किल हो रहा है। कभी आंधी जैसा माहौल तो कभी बारिश जैसा। माहौल पल पल बदलता जाता है। शायद उसकी आंखों से आंसू बह रहे है। धीमी धीमी सिसकियां भी सुनाई दे रही है। कभी कभी वह हिचकियां भी ले लेती है। मैंने उसके हालात समझ कर अपनी करवट बदल ली है और पीठ के बल हो चुका हूं। उसका चेहरा

दूसरी तरफ है और मैं छत की तरफ निहारते हुए सोच रहा हूं। यहां पर मेरे भी नाक का सवाल पैदा हो रहा है। ऐसे समय में प्रेस्टिज पाइण्ट कुछ ज्यादा ही बड़ा दिखाई देने लगता है। रोज रोज की इन हरकतों से मैं भी तंग आ चुका हूं। इसने मेरा जीना दूभर कर दिया है। बिना मतलब यूंही रोज रोज मुंह फुला लेती है, नाराज हो जाती है, पीठ फेर कर लेटी रहती है, घण्टों आंसू बहाती है, हिचकियां लेती है, देर तक यूं ही सिसकती रहती है बिना किसी वार्तालाप के। मेरा हाल पूछने की बजाय वह अपना ही हाल दिखाती रहती है। इस बात पर मुझे भी गुस्सा आ जाता है। मुझे अपने हाल का फिक्र है और उसे तो अपनी ही पड़ी है। जब काफी देर तक उसकी गतिविधियों पर मेरी तरफ से किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया प्रकट होती हुई दिखाई नहीं देती तो अचानक वह आक्रामक होने लग जाती है। तूफान आने से पहले जिस प्रकार वातावरण शान्त रहता है उसी प्रकार वह भी तैयारी करती रहती है कि दिल के मकान का कौन सा हिस्सा ज्यादा कोमल है, कौन सा हिस्सा जल्दी तोडा जा सकता है। शायद उसे मेरी आदतों, मेरे स्वभाव का आभास हो चुका

है। मेरी शराफत का नाजायज फायदा लेना चाहती है। वह यह भी अच्छी तरह जानती है कि उसने बिना मेरा कौन सहारा, वो मेरी मै उसका, हम दोनो एक दूसरे के। आखिर कभी न कभी तो मैं उसे मना ही लूंगा मगर वह शायद यह नहीं जानती कि काठ की हाण्डी सिर्फ एक बार ही चढ़ती है, बार बार नहीं। खिचड़ी जब जी चाहे जितनी बार भी पकाओ लेकिन हाण्डी को तो हर बार बदलना ही पड़ेगा। मैं भी किसी से कम नहीं हूं। वह नहीं बोलती तो न सही। रोज रोज उसे मैं बुला कर उसके भाव क्यों बढ़ाऊं। जब हवा शान्त हो जाती है तो बादल भी अपने आप ही बरसने लग जाया करते है। वह भी अपने आप ही बरसेगी सारी रात प्यार के रूप में। मैं ही क्यों कहूं कि आ बैल मुझे मार। जिसे जरूरत हो वही पहले बोले और जो बोले वो कुण्डी भी खोले प्यार की। कूंआ कभी भी प्यासे के पास जाकर यह नहीं कहता कि ले भई मुसाफिर अगर प्यास लगी है तो ये ले तू ठण्डा ठण्डा पानी पी ले। यहां तो प्यासे को ही कूंए के पास जाना पड़ेगा वरना पानी या तो सूख जायेगा या फिर सड़ने की कगार तक पहुंच जायेगा। पानी सड़ जाये तो बिमारियां फैलाता है और सूख

जाये तो अकाल। दोनो ही नुक्सानदायक होते है। जब पानी ही नहीं रहेगा तो कुंआ भी महत्वहीन हो जायेगा। बिना पानी के कूंआ भी कुछ नहीं होता।

बैड पर लगी हुई मच्छरदानी मे घुसे हुए मच्छरों की तादाद देखने की कोशिश कर रहा हूं, साथ ही यह भी देखने का प्रयास कर रहा हूं कि अंधेरे में देखने लायक प्रकाश में मच्छरदानी के भीतर या बाहर कितने मच्छर उड़ाने भर रहे है ठीक बमवर्षक विमानों की तरह। सभी मच्छर घुसपैठ करने की फिराक में है दुशमन के गुप्तचरों की तरह। हमारी नींद की शंाति भग करने के लिए। उसकी सिसकियों और हिचकियों को ध्यान में रखते हुए तथा उसकी हरकतों पर नजर रखते हुए मैं बेखबरी का नाटक या सो जाने का बहाना करते हुए मेरा ध्यान उसकी सांसों की गति पर केन्द्रित है और मेरा मन बीते दिनों के प्यार और तकरार का हिसाब लगाने में लगा हुआ है। जब यह लगता है कि ज्यादा दिन प्यार में बीत चुके है तो कभी कभार तकरार का हो जाना बुरा नहीं है परन्तु जब यह लगता है कि तकरार के दिन बार बार आ रहे है तो दिल खूंटा ही ले भागने को उतारू हो जाता है और सोचने

लगता है कि प्यार कम क्यों होता जा रहा है और तकरार बढती क्यों जा रही है। गृहस्थी की तरकारी में नमक मिर्च तेज क्यों होता जा रहा है, क्यों यह दिल बीपी का मरीज हो रहा है दिन ब दिन।

मस्तिष्क में बीते दिनों की घटनाएं चलचित्र की तरह दिखाई देने लगती है। पुरानी यादें अचानक ही रात में, ऐसे समय में, तकरार के समय ताजा होने लगती है जिन्हे शायद कभी भी ऐसे समय में ताजा नहीं होना चाहिए। इन घटनाओं को ताजा करने का अपराध केवल उसी का है वो अगर चाहे तो उन्हे हमेशा के लिए दबा कर रख सकती है। इन घटनाओं के बेवक्त ताजा होने में किसे कितना नुक्सान हो सकता है किसी को भी मालूम नहीं।

प्रातः काल साढ़े आठ बजे के आस पास का समय।

लंच बॉक्स कन्धे पर लटकाये हुए बस स्टैण्ड पर खड़ा हुआ मैं अपनी बस की प्रतीक्षा कर रहा हूं। मेरी निगाहे पुस्तक में है जो अक्सर मे◌ै◌ं समय काटने के लिए पढ़ता रहता हूं। बस से आते जाते हुए मुझे शायद सप्ताह भी का समय ही हुआ होगा।

"भाई साब आप क्या काम करते है।"

पुस्तक पढ़ते हुए सहसा ही मेरे कानों में किसी महिला का मधुर स्वर गूंजता है। वह एक अन्य नवयुवती के साथ है। आर्कषक और विवाहिता, पराई स्त्री। एक साथ तुरन्त दो काम होते है। पहला तो यह कि दिल में एक प्रकार की प्रसन्नता महसूस होती है कि मुझ जैसे अज्ञात व्यक्ति में भी किसी पराई स्त्री ने रूचि दिखाई है। बातचीत की पहल की है वरना मैं इतना अधिक संकोची प्राणी हूं कि दिल से चाहते हुए भी किसी भी पराई स्त्री से बातचीत की पहल किसी भी हाल में नहीं कर सकता चाहे उसके बारे में कल्पनाएं कितनी भी क्यों न करूं। साथ ही यह भी सोचता हूं कि अपने बस स्टैण्ड से भी कोई स्त्री साथ में जायेगी। उसकी सूरत देखकर या बातचीत करके, जैसे भी हो चलेगा। समय काटने का साधन मिल गया। दूसरा दुख इस बात से होता है कि वह मुझे भाई साब के नाम से सम्बोधित करती है। किसी भी पराई स्त्री का भाई कहलवाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है परन्तु जब किसी रिश्ते को दिल ही स्वीकार न करे तो वह रिश्ता बनाना ही बेकार है और फिर गरज यह कि आज का माहौल भी कुछ ऐसा ही है कि मेरे दिल को पराई स्त्री को

बहन बनाना बिल्कुल भी मंजूर नहीं। वो मुझे भाई बनाना चाहती है तो सो बार बनाये लेकिन मैं एक बार भी उसे बहन नहीं मान सकता। यही तो एक तरफा सम्बन्ध है। शायद ही कोई व्यक्ति होगा जो किसी भी पराई स्त्री को दिल से बहन बनाने या मानने की इच्छा रखता होगा। कम से कम मैं तो नहीं। उसे किसी भी प्रकार से सम्बोधित न करते हुए मैं भी टका सा जबाव देता हूं:-

"सरकारी नौकरी।"

"कहां पर ? किस विभाग में करते है" ? वह फिर उत्सुक्ता से पूछती है।

"सी पी डब्ल्यू डी में।" मैं भी संक्षिप्त सा उत्तर दे देता हूं।

"ये कौन सा डिपार्टमैण्ट है भाई साब?" गृहिणी होने के कारण शायद उसे विभिन्न विभागों के नाम तथा काम के बारे में पूरी जानकारी नहीं है। उनके बारे में अधिक जानना चाहती है।

"केन्द्र सरकार के लिए भवन, सड़के आदि बनाने का काम करता है।" मैं क्रमानुसार बताता जाता हूं। हालंाकि उसके बारे में भी मैं कुछ दिन पूर्व बस से आने जाने के दौरान ही कुछ न कुछ

जान बूझ चुका था फिर भी समय काटने की गरज से मैं भी पूछने लगता हूंः-

"आपके बारे में जानना चाहता हूं। आप क्या करती है"?

"बी0 एड0।"

वह बताती है। उसके साथ वाली नवयुवती हम दोनो के वार्तालाप में कोई हिस्सा नहीं ले रही। केवल खडी खडी देख और सुन रही है।

"कितने साल की है।"

उसके चेहरे को निहारते हुए मैं फिर पूछता हूं। अच्छी तरह से सज धज कर आयी है वह। ठीक तरह से श्रृंगार करके। वह कितनी भी सती सावित्री है यह सब तो मैं नहीं जानना चाहता लेकिन सौन्दर्य से तो वह मुझे पूरी तरह प्रभावित कर ही चुकी है। मांग में सिंदूर, माथे पर बिंदिया, होंठो पर सुर्खी और चेहरे पर पूरा और भरपूर मेकअप अर्थात वह शतप्रतिशत सती सावित्री ही लग रही है दुल्हन के रूप में।

"सिर्फ एक साल की है।" वह कहती है

"कौन सा कॉलेज है?" यह जानते हुए भी कि शहर में केवल एक ही महाविद्यालय है महिलाओं

का। फिर भी मैं जानबूझकर पूछ ही लेता हूं ताकि वह चुप न रहे। कम से कम वार्तालाप का सिलसिला जारी तो रहे हमारी बस के आने के समय तक।

“कन्या महाविद्यालय।” वह उसी तरह धीरे धीरे संक्षिप्त सा उत्तर दे रही है जैसे कि थोडी देर पूर्व मैंने भी दिये थे।

”आपकी वापसी कब तक होती है? आपके महाविद्यालय का समय कब से कब तक होता है? वापसी में ठीक तरह से बस की सुविधा तो मिलती है या नहीं?” प्रश्नोत्तर जारी रहता है।

“हमारे महाविद्यालय का समय बहुत ही कम होता है। केवल तीन या चार या फिर पंाच पीरियड लगते है। वापसी भी जल्दी ही हो जाती है। कभी लोकल बस मिल जाती है तो कभी एक्सप्रैस।” अब वह इस प्रकार से खुलकर, घुलमिल कर, बिना लागलपेट के जबाव दे रही है जैसे कि वह मेरी काफी घनिष्ठ हो या फिर मैं उसे बरसों से जानता हूं। जैसे कि हमारा मेलजोल, सम्बन्ध काफी पुराना हो चुका हो। जहां पहले वह कुछ हिचकिचा रही थी लेकिन अब संयत होकर बातचीत कर रही है। उसने नियमानुसार महाविद्यालय की पौषाक पहन रखी है।

उस अप्रत्याशित बातचीत के बारे में मैंने कभी भी सोचा ही नहीं था केवल इच्छा ही रखा करता था। वह इच्छा इस प्रकार से यकायक पूरी हो जायेगी मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था और वैसे भी किसी की इच्छा कभी कभार ही पूरी होती है। हमारी बातचीत का सिलसिला और आगे बढ़ पाता उससे पहले ही बस आकर स्टैण्ड पर रूक गई थी, न चाहते हुए भी बातों का क्रम बीच में ही तोडना पड़ा और हम तीनो को बस में सवार होना पड़ा था। वह अपनी कलास के दल के पास जा बैठी औ मैं अपने साथ आने जाने वाले दैनिक यात्रियों के पास। उस दिन के सफर में दुबारा उससे बातचीत नहीं हो पाई थी। पूरे सफर के दौरान मेरी निगाहों में उसका चेहरा घूमता रहा था। निगाहें बार बार उसी के चेहरे पर जाकर केन्द्रित हो जाती थी जैसे कि वहां पर कोई चुम्बक लगा हुआ हो जो बार बार मेरी निगाहों को अपनी तरफ खींच रहा हो।

दैनिक मुलाकातों के दौरान मैंने अपना परिचय देते हुए उसका नाम-धाम, पारिवारिक स्थिति आदि के बारे में सब कुछ जान लिया था। बिना किसी लाग-लपेट या संकोच के उसने मुझे सब कुछ बताने

में कोई आपत्ति महसूस नहीं की थी। रोज रोज आपसी समस्याओं पर बातचीत का आदान-प्रदान होता रहा। किसी भी पराई स्त्री से बातचीत करने का वह मेरा प्रथम अवसर और अनुभव था। मैंने भी कभी कोई हिचकिचाहट या घबराहट महसूस नहीं की थी। पता नहीं ये कैसा अनाम रिश्ता है या मित्रता कि कभी वह बस स्टैण्ड पर दिखाई नहीं देती थ्ी तो मुझे भी एक अजीब सा खालीपन महसूस होने लगता, आंखों में उसकी तस्वीर रहती, उसी का रास्ता देखता रहता और प्रतिक्षा करता रहता। ऐसा लगता जैसे कि कुछ खो सा गया हो। समझ में नहीं आता था कि ये कैसा अनाम सम्बन्ध है। लगता है जैसे कि उससे कोई लगाव सा हो गया है। विपरीत लिंग के प्रति ये कैसा आकर्षण है। उसे कभी ऐसा महसूस हुआ या होता है कि नहीं यह मैं नहीं जानता लेकिन जो कुछ भी मै महसूस करता हूं वह प्यार है या कुछ और है यह केवल भगवान ही जानता है। यह एकतरफा मित्रता ही मेरे लिए एक सुनहरी खिड़की का रूप धारण करती जा रही है जो किसी और के घर का अभिन्न अंग है। उस घर की खिड़की की तरफ देखना, उसके बारे में सोचना, उसे पाने या

अपने घर में लगाने की कल्पना करना या उसकी प्राप्ति की इच्छा करना ही तो अपनांे के साथ धोखा होता है, घर के साथ विश्वासघात होता है और समाज या कानून के साथ ठगी जो कि किसी को भी नहीं करनी चाहिए चाहे इसके विपरीत अपने घर की खिड़की कैसी भी क्यों न हो, चाहे वह लोहे या घटिया धातु की क्यों न बनी हुई हो। खिड़की तो खिडकी ही होती है चाहे वह सोने की हो या चांदी की। समय का प्रभाव हर खिड़की पर पड़ता है किसी पर कम तो किसी पर ज्यादा। किसी पर तुरन्त तो किसी पर देरी से। अप्रभावित कोई भी खिड़की नहीं रहती। ऐसा ही खालीपन तब लगा करता था जब मेरी शादी सम्पन्न हुए कुछ ही समय व्यतीत हुआ था और वन्दना मेरे पास नहीं होती थी। मेरे घर की वही सुनहरी खिड़की अब जेल की लोहे के सलाखों जैसी हो चुकी है। मुझे उस समय बहुत आश्चर्य होता है जब पत्नियों का गृहस्थाश्रम बहुत जल्दी समाप्त होने लगता है और वे दुनियावी पति रूपी परमेश्वर को भुलाकर धार्मिक होकर मीराबाई बनकर गाने लगती है मेरेे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई। वास्तव में जो पति उनके पास होता है उसे पहचानने

से इनकार कर देती है और उस भगवान को जो निराकार है साकार नहीं है उसकी तलाश में जुट जाया करती है। मीरा बाई के भजन ऐसी लागी लगन मीरा हो गई मगन वो तो घड़ी घड़ी हरि गुन गाने लगी गाकर अपनी जिंदगी व्यतीत कर देती है। या फिर वो गौतम ऋषि की पत्नि अहिल्या की तरह पत्थर की शिला जैसी हो जाती है। उसमें उमंग नाम की चीज नहीं रहती और पति देव उसकी उमंगो का इन्तजार करते करते सो जाया करते है। कई बार मैं परमपिता परमात्मा से विवश्ता की ईमानदारी से प्रार्थना करता हूं कि हे परमात्मा तू या तो मुझे उठा ले या इसे। कम से कम यह तो कहने लायक हो जाऐगा कि दोनो में से एक का जीवनसाथी नहीं है। हो कर भी ये क्या तीर मारती है। हो कर भी न होने जैसी। नहीं होगी तो कम से कम यह तो तसल्ली रहेगी कि बेचारा विधुर है। इसका होना या न होना एक बराबर है। ये तो अभी से अहिल्या बन गई है। न इसमें कोई उमंगा है न तरंग। केवल शिला है। बार बार इसे झंझोड़ने से क्या फायदा।

वन्दना की सिसकियों से लापरवाह, अनदेखा, अनसुना कर कई बार मुझे पराई और बाहर की

महिलाओं में रूचि होने लगती है। बाहर की लोहे की खिडकी मुझे सुनहरी लगने लगती है। मैं लगातार सोचता ही रहता हूं कि शादी करने के बाद मुझे फायदा हुआ या नुक्सान। ये कभी कभी का नुक्सान ही तो व्यापार के तगड़े घाटे की तरह का है जो बरसों से जमे जमाये हुए व्यापार को एक ही झटके में बराबर कर देता है। किसी भी व्यापारी को पूरी उम्र सोचने और संभलने का मौका ही नहीं देता। सागर के ज्वारभाटे की तरह यह नुक्सान सब कुछ डुबो कर रख देता है।

यहां पर पत्नियों और बाहर की अन्य महिलाओं की तुलना मेंै विभिन्न प्रकार की खिडकियों से करने लग जाता हूं। ये पतियों के लिए कई प्रकार की खिडकियों के समान होने लग जाती है जिनमें से होकर रास्ता इनके दिलों को जाता है। ये रास्ता एक अंधेरी सुरंग की तरह है जिसमें प्रविष्ट होने के पश्चात आदमी न इधर का रहता है न उधर का। सुरंग में चलने के लिए महादेव की तरह तीसरी आंख का जुगाड करना पड़ता है, उसका उपयोग करना पड़ता है। ये सभी खिडकियां कई प्रकार की हो सकती है जैसे कि रेल की खिड़कियां, जेल की

खिड़किया, खुली खिड़कियां, बन्द खिडकियां, छोटी खिडकियां, बड़ी खिडकियां, जालीदार खिडकियां, सैक्सन खिडकियां, सरियेदार विभाजित खिडकियां, लकड़ी की खिडकियां, पत्थर की खिडकियां, घरेलू खिडकियां, बाजारू खिडकियां, दुकान की खिडकियां, मिल की खिडकियां, कोठों की खिडकियां, स्कूलों की खिडकियां, भद्दी खिडकियां, रूचिकर खिडकियां, नीरस खिडकियां, बोर खिडकियां। इस सबमें से सर्वोत्तम खिडकियां है सुनहरी खिडकियां जिनके बारे में सोने का होने की कहानी प्रचलित है। वास्तव में ये वे कांच की खिडकियां है जो सूर्योदय/सूर्यास्त के समय पर सोने जैसा चमकती है, सुनहरी होने का भ्रम पैदा करती है। लोगों को लुभाती है। सत्यता से दूर किसी को भी दिगभ्रमित कर सकती है। सत्यता प्रकट होते ही आदमी कहीं का भी नहीं रहता।

शादी से पहले मुझे भी पूरा का पूरा ब्रह्माण्ड ही सोने का महल सा लगता था और तमाम खिडकियां सुनहरी। जिज्ञासा ही वह सूर्योदय या सूर्यास्त है जो बेकार से बेकार के कांच की खिडकियांे को सुनहरा बनाने का काम करती है, सुनहरा बना देती है और खिडकियां चमक चमक का

सुनहरा होने का भ्रम पैदा करती रहती है। जैसे जैसे जिज्ञासा का सूर्यास्त होता जाता है, उत्सुकता समाप्त होती जाती है वैसे वैसे सुनहरी खिडकियों का राज भी खुलने लगती है। खिडकियों की असलियत सामने आने लगती है और पता चलता है कि जिन्हे हम आज तक सोने की खिड़की समझते रहे वह तो मात्र कांच है जो बाद में टुकड़े टुकड़े होकर दिल में उतर जाता है दिल को चीर देता है। चमकने वाली प्रत्येक वस्तु सोना नहीं होती केवल सोने का भ्रम ही पैदा करती रहती है। धोखा ही दे सकती है। दूर के ढोल सुहावने लगते है परन्तु जब कान के पास आकर बजते है तो कानों के पर्दे फाड़ देते है। खिडकियां फिर खिडकियां नहीं रहती केवल पत्थर हो जाती है जिन्हे एक ही मकान में लगाये रखना पड़ता है। उम्र भर ढोना पड़ता है।

वन्दना ने जब गृह प्रवेश किया था तो एकबारगी मुझे लगा था कि मेर्रा इंट, गारे, सीमेण्ट और लोहे का बना घर भी एक बार तो सोने का हो गया था और वह सुनहरी खिड़की परन्तु समय के बदलने के साथ साथ उसने भी अपना रंग बदलना प्रारम्भ किया था, असलियत दिखाई देने लगी थी।

सर्वप्रथम सुनहरी खिड़की समय से प्रभावित होकर, समय के अन्तराल पर चांदी में बदल गई, फिर चांदी से पीतल में, उसके बाद पीतल से कांसे में, कांसे से लोहे में और अन्त में लोहे से पत्थर में। अब वह एक पत्थर और लोहे की खिड़की है जो कभी भी पिघल नहीं सकती। दिमाग का उपयोग करने की बजाय हमेशा पत्थर जैसी जुबान और लोहे जैसी भाषा का उपयोग ही करती है और फिर शब्द सुनकर ऐसा लगता है जैसे कि लोहे के चने चबाये जा रहे हों। मैंने जब कभी भी इस लोहे की खिडकी की मुरम्मत कर सुधारने की कोशिश की तो वह और भी निर्जीव हो गई, दिन-ब-दिन जड़ होती जा रही है उससे टकराकर मेरे अरमान लहू के आंसू बहाने लगते है और मेै खून के घूंट पीने पर मजबूर हो जाता हूं। जितना उसे प्यार से समझाने की कोशिश करता हूं या कोशिश की उसने उतना ही मुझे आंखे दिखाना शुरू कर दिया जैसे कि पूरे परिवार की वही एक मां हो। कभी भी किसी का लिहाज नहीं करती। छोटा बडा नहीं देखती। अपना पराया नहीं देखती। यहां तक कि बच्चों तक को बिना मतलब पीटने में बिल्कुल भी देर नहीं करती, लज्जा भी महसूस नहीं

करती। कई कई बार तो मेरे दादाजी तक को भी नहीं बख्शती। मैं भगवान से यही प्रार्थना हमेशा करता रहता हूं कि हे भगवान। तुम पत्थर की इन खिडकियांे में ऐक झरोखा भी बना देना ताकि ज्ञान का प्रकाश इनमें से अन्दर आ सके तथा इन्हे कुछ ज्ञान हो सके, इतनी बुद्धि अवश्य ही देना ताकि ये कभी तो अक्ल से काम लेना सीखें और अपना सुनहरापन सदा के लिए बनाये रखें।

दूसरी तरफ मुंह किए हुए उसकी सिसकियां अभी भी जारी है और इधर मैं इसी उधेडबुन में खोया हुआ हूं। यह रिश्ता दिन प्रतिदिन उधड़ता ही चला जा रहा है फिर से कब बुना जा सकेगा वह केवल वंदना पर ही निर्भर करता है। मेरी तरफ से कोई भी प्रतिक्रिया होती हुई न देख कर वह घुमाई हुई पीठ का आसन बदलती है, पीठ के बल होकर छत की तरफ देखती हुई कुछ न कुछ बडबडाती तो हैे। इस समय मेरी समझ में यह नहीं आता कि ऐसे वक्त में जब बीवी आंसू बहाये, आंसुओं को अपना ब्रहास्त्र बना ले तो मुझे क्या करना चाहिये। उसे यूं ही आंसू बहाते हुए देखते रहना चाहिये या कुछ सोचना और करना भी चाहिये। आंसू पोंछने चाहिए, रोती हुई

बीवी को चुप करवाना चाहिये या उसे देर तक रोते हुए देखते और प्रतिक्षा करते रहना चाहिए। वह हमेशा मुझे ही दोष देती रहती है और मैं उसे। हम दोनो एक दूसरे पर दोषारोपण करते रहते हैं, एक दूसरे को दोष देते रहते है बल्कि होना तो यह चाहिए कि हमें अपने अपने अवगुण खुद ही देखने चाहिये लेकिन वास्तव में ऐसा बिल्कुल भी नहीं होता। खुद की फोटो उतारने की बजाये हम औरों की फोटो उतार कर मीन मेख निकालते रहते हेैं। मैं भगवान से हमेशा ही नाराज रहता हूं कि क्यों उसने समस्या खड़ी की, क्यों उसने ऐसी शय, एक ऐसी पहेली की रचना की जिसे समझते समझते पूरी उम्र ही बीत जाये और अगर तिनका मात्र समझ में भी आ जाये तो अर्थ का अनर्थ हो जाये। समझने की कोशिश भी करे तो कभी भी सफलता न मिले। भगवान तूने क्यों ऐसी रचना की, व्याकरण रूपी ऐसे अलंकार लगाये कि किसी भी शब्द का अर्थ हमेशा ही उलटा निकाल लेती है। हमेशा हार ही पल्ले पड़ती है। हार के आगे जीत है और जीत के आगे फूलों का हार। पत्नि मनौविज्ञान की एक ऐसी कठिन पुस्तक है जिसे उम्र भर में धीरे धीरे करके पढ़ा तो जा सकता

है लेकिन उसका भावार्थ कभी भी समझ में नहीं आता। अगर समझ में आ भी जाये तो हमेशा ही उल्टा। जैसे कि धूम अर्थात धुंआ या उपद्रव, आंदोलन और पर अर्थात परन्तु यंा पंख आदि। अपना अपना अपराध स्वीकार करने की बजाये हम दोनो ही हमेशा एक दूसरे को ही दोष देते रहते है, अपराधी ठहराते रहते है। वास्तव में दोषी कौन है ये तो केवल भगवान ही जानता है। दुबारा फिर वह कुछ सुस्पष्ट शब्दों में दोहराती है, शब्दों का उपयोग इस प्रकार से करती है कि अबकी बार मेैं समझने से इनकार नहीं कर सकता। मुझे कुछ न कुछ तो बोलना ही पडेगा। मैं समझ में नहीं आने का बहाना नहीं कर सकूंगा।

"पता नहीं कैसे पत्थर दिल हैं आप। अब बिल्कुल भी परवाह नहीं करते मेरी। पहले तो मुझे जरा सा भी रोने नहीं देते थे तुरन्त चुप करवा लेते थे, पुचकारते थे, गले लगा लेते थे, प्यार करते थे। पता नहीं अब वो पहले वाला प्यार कहां चला गया। अब तो आलम यह है कि मैं पिछले चार दिन से लगातार रोती ही रही हूं, मेरी सुध ही नहीं लेते। पत्थर दिल इनसान कहीं के। पता नहीं आपकों क्या

हो गया है आजकल। पूछते ही नहीं कि मैं जीवित भी हूं या नहीं। जिन्दा हूं या मर गई।"

"भागवान तुझे बार बार समझा समझा कर मैं पागल हो गया हूं कि रोज रोज इस प्रकार की हरकतें अच्छी नहीं लगती, शोभा नहीं देती। कभी कभार की बात हो तो अलग बात है। मगर तुम तो किसी भड़वे की सुनती ही नहीं हो।ं तुम्हारा तो रोज रोज का एक ही काम रह गया है। नाराज हो जाओ और जी भर कर आंसू बहाओ। वक्त बेवक्त जब भी जी में आये नाराज हो जाती हो, रोना शुरू कर देती हो, आंसू बहाने लगती हो। रोज रोज परीक्षा लेती रहती हो मेरी। तुम्हे तो पता ही है कि मैं हमेशा तुम्हारी कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता, रोज रोज परीक्षा में पास नहीं हो सकता। फेल होने के बाद ही पास होने की खुशी होती है, लगातार असफलता के बाद मिली सफलता का मजा आता है।" उसकी बातों पर मुझे भी कभी कभी ध्यान देना ही पड़ता है।

"आप तो काम पर चले जाते हो घर में एक पल भी नहीं रूकते, घर पर आपका जी नहीं लगता। सुबह जाकर शाम को आते हो और रह जाती हूं मैं अकेली घर में कैदियों की तरह। उस पर तुम्हारी मां

की पाबन्दियां। हर काम में रोड़ा अटकाती है। बाधा खड़ी करती है। फालतू की नुक्ताचीनी होती रहती है। मनोरंजन का कोई भी साधन नहीं है। टीवी देखती हूं तो आंखों में खटकती हूं। दिन भर काम में पिसते रहते है। बोर होते रहते है।" काफी देर तक रोने के बाद शायद वह कुछ हल्कापन महसूस करती है। अब उसकी सिसकियां बंद होने लग रही है।

"देखो अगर कहीं पर चार बर्तन होंगे तो आपस मे बजते ही रहंेगे न। कभी कभार ऐसा तो हो ही जाता है कि आपस में कहा सुनी हो जाती है। बर्तनों के बजने का समय आ जाता है। इन छोटी छोटी बातों को लेकर तुम अपना दिमाग तो खराब करती ही हो और साथ में मेरा भी। मेरा मूड खराब करके तुम मेरे मातापिता के लिए मेरे दिल में जहर भरने का काम करती रहती हो। थके हारे शाम को घर आते हुए मैं तुम्हारा खिला हुआ चेहरा देखना पसन्द करता हूं न कि सड़े हुए टमाटर जैसा। लेकिन यहां तो माजरा कुछ और ही देखने को मिलता है। मेरी सोच के विपरीत रोज रोज तुम्हारा चेहरा सूजा हुआ रहता है, मुरझाया हुआ रहता है। अगर तुम रोज रोज यूं ही करती रहोगी तो मैं तो घुन की तरह

पिसकर रह जाउंगा तुम दोनो की, सास बहू की चक्की के बीच में। मेरा हाल दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय वाला हो जायेगा। एक तरफ तुम हो और दूसरी तरफ मेरे माता पिता। तुम्हारी शिकायतें अलग है और उन सब की अलग।ं तुम ही बताओ कि मैं किसकी तरफ जाउ। किसको देखूं और किस को अनदेखा। ऐ गमे जिंदगी कुछ तो दे मशविरा, एक तरफ है उसका घर एक तरफ मैकदा। तुम दोनो में से मैं किसी को भी नहीं छोड़ सकता। मैं उनका सहारा हूं और तुम मेरा। सांप के मुंह में छछूंदर वाली बात हो रही है न छोड़ते बनता है और न ही निगलते। तुम दोनो की समस्याओं ने छछूंदर बनकर मेरे जीवन को नरक बना डाला है, खुशियों में जहर घोल दिया है। मेरे गले की हडडी बन गया है। इससे पहले तो मैं ऐसे ही ठीक था कुंवारा। न कोई चिन्ता थी और न कोई फिकर। आराम की खाते थे, चैन की बंसी बजाकर सोते थे। 20 बरस पहले खाये हुए मोतीचूर के मीठे लडडू का असली स्वाद तो मुझे अब आने लगा है। खाना और सोना बस ये काम थे और अब तुमने मेरे सोने को चांदी और लोहे से भी बदतर कर दिया है और सारी मस्ती उतार दी

है। अब मैं पागल होने लगा हूं तुम दोनो की रोज रोज की बातों से तंग आ गया हूं, दिल मर चुका है, मेरे अरमानों की चिता जला दी है तुमने। अब मैं इस रिश्ते की अर्थी ही तो ढो रहा हूं। जीवन के बाकी साल अब तो श्मशान भूमि की तरह नजर आ रहे है। पता नहीं कब तक चलेगा ऐसा। उसकी बातों पर मुझे भी गुस्सा आने लगा है।"

इस गुस्से से मैं हमेशा ही बचकर निकलना चाहता हूं परन्तु कभी कभी यही गुस्सा बैरियर बन कर मेरी सोच के वाहनो को रोक लेता है। फलस्वरूप नकारात्मक विचारों की लाइन लगकर अरमानों का टैªफिक जाम हो जाता है। यही बात कभी कभी विचारों को गति अवरोधक की तरह रोकने का प्रयास करती है। इन्ही सब बातों के कारण दुर्घटना होने की प्रबल संभावना बनी रहती है।

"पागल तुम नहीं हो केवल मैं हूं। तुम तो अपने माता पिता के साथ हो, अपने शहर में हो, अपने घर में हो, अपने भाई बहनों के बीच में हो, अपने साथियों के बीच में दोस्तों के बीच में। तुम्हारे लिए मैंने अपने माता पिता को छोड़ा, अपना परिवार छोड़ा, अपने भाई बहन छोड़े, अपनी सखियां आदि

को सब कुछ छोड़ दिया। फिर भी तुम्हे मेरी बिल्कुल भी फिकर नहीं। ऊपर से अपने मां बाप की अलग अलापते हो। उसकी बातों से बगावत की बू आने लगती है। टूटने का आभास होने लगा है जैसे कि उसके माता पिता ने उसे यह सब सिखा कर पढ़ा लिखा कर, अलग होने का प्रषिक्षण देकर भेजा है ठीक विदेशी आतंकियों की तरह जो किसी की भी एकता को बर्दाशत नहीं कर सकते तथा हमेशा ही तोड़ने की कूट नीतियां बनाते रहते है।

"तुमने क्या कोई नया काम किया है जो इस तरह से कह रही हो। ये तो हमारे समाज का, पूर्वजों का बनाया हुआ नियम है, रिवाज है, हमारी परम्परा है। सामाजिक आवश्यकता, व्यवस्था है। हमारी बहनों ने भी तो घर छोड़ा है। तुम्हारी तरह वो भी अपना सब कुछ छोड़ कर ससुराल गई हैं। उन्हाने भी तो अपना फर्ज निभाया है, अपने दायित्व समझे है। तुम्हे भी अपनी मर्यादा का ख्याल रखना चाहिए, अपना दायित्व समझ कर जीवन निर्वाह करना चाहिये। तुम भी यही चाहती हो कि तुम्हारी तरह मै भी अपने माता पिता को छोड़ दू, उन्हे बेसहारा कर दूं।"

अब वह पूरी बहस करने पर आमादा है। लड़ाई करने पर उतारू है।

"हर्ज ही क्या है। हमेशा ऐसा ही होता आया है और होना भी तो चाहिए। बच्चे मां-बाप के साथ हमेशा कहां रहते है भला। शादी के बाद अलग होना भी तो एक आम बात है। लोग ऐसा करते ही आये है। तुम्हे भी तो ऐसा करना चाहिये। आज नही तो कल अलग होना ही पड़ेगा। तो क्यों न अभी से यह व्यवस्था कर दी जाये अलग होने की कार्यवाही कर दी जाये। जो काम बाद में करना पड़े उसे पहले ही कर लेना चाहिये। बाद में भी तो करना ही है। अलग से रहेंगे तो सारे अरमान पूरे करेंगे। जब जी चाहे पिक्चर जायेंगे, पिकनिक पर जायेंगे, घूमेंगे, दोस्तों मित्रों से मिलेंगे जबकि यहां पर इस घर में, संयुक्त परिवार में साथ साथ रहते हुए कभी भी हमारे अरमान पूरे होते हुए नजर नहीं आते। हर चीज को तरसते रहते है। हर इच्छा अधूरी ही रह जाती है। दिल के अरमान आंसुओं में रोज ही बहते रहते है। अगले जन्म में भी पूरे होने की उम्मीद नहीं। अरमान घनघोर बादलों की तरह तो आते रहते है लेकिन बरस नहीं पाते। बेचारे बिन बरसे ही चले जाते हैं

क्योंकि यहां पर पाबन्दियों का इतना विशाल सहारा का रेगिस्तान है जिसमें दूर दूर तक बड़े बड़े दुखों के टीले ही टीले पसरे हुए नजर आते है। सिवाय रेत के इसमें कुछ भी नहीं जो मेरे अरमानों की घटाओं को आकर्षित कर सकते। मन का मयूर नाच सके। आशाओं की दूब नहीं, आशाओं के पूरे होने की वनस्पति उग ही नहीं सकती। विशाल पेड़ नहीं। जिनसे कभी भी अरमानों के पूरे होने की उम्मीद लगाई जा सके। पाबन्दियों के भयानक तूफान हैं जो अरमानों के बादलों को उड़ाकर पता नहीं कितनी दूर तक ले जाते है। बिना अरमानों के जीवन कैसा। ठीक वैसे ही जैसे कि बना वर्षा के फसल या बारानी जमीन जो कभी कभी पानी के अभाव में हमेशा के लिए बंजर हो जाती है। मेरा जीवन कुछ काम न आया जैसेे सूखे पेड़ की छाया। जीवन में अरमानों का होना, उन अरमानों का पूरा किया जाना बहुत ही आवश्यक है ताकि मरते दम तक अरमान केवल अरमान ही बनकर न रह जायें। कभी तो पूरे होने ही चाहिए न। वरना अरमान केवल अरमान ही रह जायेंगे और जिंदगी एक मुसाफिर। कुछ कुछ अरमान पूरे होते रहें तो जिंदगी को ढोना ही पड़ता वरना

जिंदगी हमें ढोयेगी। वह बखान करना भी जानती है। साथ ही यह एक कटु सत्य भी है कि संयुक्त परिवार में अलग से अरमान पूरे करना कितना मुश्किल काम है और नुक्सानदायक। ये तो बुजुर्गों को खुद ही सोचना चाहिये कि किसी के भी अरमान बेकार न जाये और उनका खून नहीं होना चाहिये। संयुक्त परिवार के सौ सुख है लेकिन एक दुख सबसे बड़ा है जो सबको तोड़ देता है स्वतन्त्रता का विरोधी।"

"देखो मैं तुम्हे साफ साफ बता देना चाहता हूं कि इस शहर में एक हीं शहर में रहकर मैं अपने माता पिता से अलग घर लेकर नहीं रह सकता। तुम इसे मेरी मजबूरी समझों या कायरता। चेतावनी समझो या कुछ जो भी तुम्हे अच्छा लगे। अलग होने के विषय पर भी भविष्य में कभी भी बात सुनना नहीं चाहता। हां, अगर कभी प्रमोशन या स्थानान्तरण हुआ तो मेरे माता-पिता स्वेच्छा से तुम्हे मेरे साथ भेज दंेगे। वे इस बात को जरा भी महसूस नहीं करेंगे कि तुम उन्हे छोड़कर मेरे साथ जा रही हो। लेकिन एक ही शहर में रहते हुए जो लोग ऐसा करते है या करने की इच्छा करते हैं वे सब के सब पागल है, बिल्कुल ही नासमझ है। वो

यह सब नहीं जानते कि वो किसकी इच्छा रखते है। और क्या क्या काम करना चाहते है। वे यह नहीं जानते कि संयुक्त परिवार में कितने फायदे है। उन्हे जब अक्ल आती है तो सिर थाम लेते है, रोते हैं अपनी करतूतों पर। मेेरे पास इस इस प्रकार के कितने ही फायदे है। जिन्हे मैं तुम्हे गिनवा सकता हूं लेकिन तुम फिर भी न समझना चाहो तो तुम्हारी मर्जी। तुम्हे तो ये सब फायदे नजर ही नहीं आते क्योंकि तुम्हे एक एक फायदा नजर आता है आजादी का और नुक्सान लगता है साथ साथ रहने का।" संयुक्त परिवार में साथ साथ रहने का नुक्सान वह हमेशा ही गिनाती रहती है। मौका मिलते ही सबसे पहले नुक्सान ही गिनाने लगती है। वैसे भी हर चीज के दो पहलू होते है। हर काम के कुछ फायदे होते हो तो कुछ नुक्सान। केवला फायदा ही हो या केवल नुक्सान यह बिल्कुल असंभव बात है। दूर दूर रहते हों तो रिश्ते चुम्बक की तरह आकर्षित करते रहते है और अगर पास पास हों तो रिश्तों में घर्षण पैदा होने का खतरा बढ़ जाता है जो बाद में आग लगा देता है। रिश्ते बिल्कुल चुम्बक की तरह होते है। पास

पास वालों का दूर भेजते रहते है और दूर वालों को पास करते रहते है।

"साथ साथ रहने के अगर सौ फायदे है तो कुछ न कुछ नुक्सान भी तो है। न ढंग से खाना, न ढंग से पहनना। न अपनी मर्जी से कहीं आ सकना और न कहीं जा सकना। बात बात के लिए आज्ञा लेना, पूछ पूछ कर काम करो और आधे से ज्यादा कामों में इनकार ही होती है। पूछो तो इनकार और न पूछो तो अपनी मर्जी चलाने का आरोप लग जाता है। दोनो तरफ से बुरे। बात बात पर अगर इनकार ही होता रहे तो मन मार कर ही रहना पड़ता है।" पता नहीं उसके ऐसे कौन कौन से अरमान हैं जो आज तक पूरे नहीं हुए हैं, जिन्हें वह पूरा करना चाहती है।

"बड़ों से पूछ कर काम करना हमारा कर्तव्य है। उन्हें जो अच्छा लगेगा उसे तो करने देंगे ही और जो अच्छा नहीं लगेगा उसे नहीं करने देंगे। अगर हमें ये इनकार य नुक्ताचीनी लगती है तो यह हमारी नासमझी है। हमारी इस कमअक्ली और नासमझी के कारण ही हम अक्सर उन्हे गलत समझने की भूल कर बैठते है।" जैसे जैसे मैं उसे समझाने की

कोशिश करता हूं लेकिन वह है कि शायद अपने दिल का गुबार निकाल ही लेना चाहती है और उसे यही शिकायत है कि बुर्जुग युवाओं को समझने को कोशिश ही नहीं करते। वो यह जानना ही नहीं चाहते कि हम क्या चाहते है।

"हर काम गलत तो नहीं होता। हर काम में अपनी टांग अड़ाना ये अपना ज्ञान और जन्मसिद्ध अधिकार समझते है जैसे कि हम उनके गुलाम हो। ये यही तो चाहते हैं कि बात बात में हम उनसे पूछें और वे इनकार करें, उनकी इज्जत हो। उनका दबदबा हम पर हमेशा कायम रहे। मगर यूं ही चलता रहा तो हम जिंदगी में कभी भी अपनी मर्जी से किसी भी प्रकार का फैसला करने की स्थिति में नहीं रहेंगे। हमेशा ही गलत फैसले लिया करेंगें।ं हमें भले और बुरे का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं रहेगा। हमारे इस दिमाग को इन लोगों ने धोकर रख दिया है जो बाद में किसी के भी काम का नहीं रहेगा। हमें अपने दिमाग का प्रयोग या उपयोग करने की बिल्कुल भी इजाजत नहीं दी गई है। अपना खुद का स्वस्थ दिमाग होते हुए भी हम उन पर निर्भर कर रहे है। बात बात पर हमें उनकी तरफ देखना पड़ता है।" वह

यह भी भली भांति जानती है कि हम बंधुआ मजदूरों की जिंदगी जीने पर विवश है।

"ये तो वे ही बता सकते है। गलत सही का फैसला भी तो वो ही कर सकते है। अब मैं क्या कहूं और हम इस विषय में कर ही क्या सकते है। उनके खिलाफ हम कुछ नहीं कर सकते।" मैं कितने भी तर्क क्यों न कर लूं आखिर हथियार डालने ही पड़ जाते है। चुप हो ही जाना पड़ता है जब तक कि मेरे पास कोई ठोस दलील न हो। ये सब बातें सही भी है और गलत भी। सही इसलिये हैं कि हम स्वतन्त्र नहीं हैं और गलत इसलिये कि हमारी सुरक्षा नहीं रहेगी। मैं यह सब भी अच्छी तरह से जानता हूं। पांचों अंगुलियां हमेशा ही घी में रहें ऐसा कतई संभव नहीं। इतने सारे फायदे गिनाकर शायद मैं भी अपने आपको झूठी तसल्ली ही दे रहा हूं। साथ साथ रहना है तो कुछ न कुछ नुक्सान तो सहन करना ही पडेगा। मुझे यह सब मानने को मजबूर ही ही पड़ेगा। कभी कभी पत्नी की सूरत में मुझे खलनायिका मंथरा नजर आने लगती है जो मुझसे भयंकर अन्याय करवा देना चाहती है। राजा राम के बनवास की बजाये वो मुझे ही बनवासी यानि घर से निकलने

को मजबूर कर देती है। कभी कभी मुझे नायिका द्रोपदी लगने लग जाती है जो अपने बालों रूपी अरमानों के साथ न्याय करवाने का प्रयास करती रहती है। मैं स्वयं भी एक पक्का फैसला नहीं कर पाता कि मैं पत्नी को क्या समझूं मंथरा या द्रोपदी। उसके साथ कैसा बर्ताव करूं। कैसे उसे न्याय दिलवाउ। अपनों के इस कुरूक्षेत्र में जी करता है कि मैं भी श्री कृष्ण से गीता उपदेश का ज्ञान प्राप्त करूं और अर्जुन की तरह तीर कमान संभाल लूं। इस महाभारत में कोई भी अपना नहीं है। सब के सब कौरव सैना के महारथी हैं जिनसे हर तरफ से खतरा ही खतरा बना हुआ है।"

कई बार कुछ इस तरह का संयोग हो जाता है कि जब कभी उसकी तरफ मैं उचित ध्यान नहीं दे पाता था तो उसके दिमाग में षक का कीड़ा कुलबुलाने लग जाता कि कहीं न कहीं दाल में अवष्य ही कुछ न कुछ काला है और दाल के इसी कालेपन की कल्पना को ध्यान में रखते हुए वह कहने लग जाती:-

"आजकल तुम मुझमें बिल्कुल भी रूचि नहीं दिखा रहे। मुझ से दिल भर चुका है क्या। मुझसे

पिण्ड छुड़ाने का इरादा तो नहीं कर रखा कहीं। या कोई दूसरी देख ली है जिसके कारण तुम मेरी तरफ देखते ही नहीं, तुम्हें मेरी सुध ही नहीं रहती।"

"अगर रोज रोज तुम्हारा यही हाल रहा तो मुझे ऐसा सोचना भी पड़ सकता है। मैं इस महाभारत से जितना ही दूर रहना चाहता हूं तुम उसे उतना ही मेरे नजदीक लाने में प्रयत्नशील रहती हो। रोज रोज एक ही महाभारत। द्रोपदी की तरह जुल्फो के अरमान बिखराकर उन्हे समेटने की मांग करती रहती हो और रिशतों की जंघा को तोड़ने का कूटनीति लगाती हो। द्रोपदी की जुल्फों को भी तो भीम ने दुर्योधन की जंघा तोड़ कर उसके खून से संवार कर समेट दिया था लेकिन तुम्हारे अरमानों को पूरा करने के लिए मैं कौन कौन से दुर्योधन की कौन सी जंघा तोड़ दूं। तुम्हारे अरमान हमेशा ही द्रोपदी की जुल्फों की तरह बिखरे रहते हैं। मैं क्या क्या उपाय करूं।" उसके संदेह का मेरे पास कितना भी ठोस जबाव क्यों न हो मगर संदेह तो संदेह ही रहता है। इसका कोई भी पुख्ता आधार नहीं होता। अगर होता भी तो बिल्कुल ही कमजोर, बेबुनियाद। वहम का कोई निदान नहीं होता।

"तो क्या मेरी सौत लाओगे।" उसका वहम शायद कभी नहीं जायेगा।

"हां, इसके बारे में भी सोच सकता हूं और फिर सोचने पर कोैन सा टैक्स लगता है। जरूरत हुई तो लानी ही पड़ेंगी। रिश्तों का ठण्डापन भी तो एक कारण हो सकता है। अगर तुम प्यार से पेश नहीं आओगी तो।" मैं मजाक करता हूं और वह परेशान हो जाती है।

"दूसरी शादी करने का विचार है क्या?"

"मुस्लिम अगर पांच शादियां कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं।"

"उन्हे तो धार्मिक तौर पर आजादी है।"

"तलाक देकर तो कर ही सकता हूं न। तुम अगर तलाक दे दोगी या मेरी मदद कर दोगी तो यह काम भी कर लूंगा।ं तुम्हारी इच्छा हो तो सब कुछ संभव हो सकता है। शादी भी हो जायेगी।

"पहले मुझे तलाक दे देना या मायके भेज देना। बाद में चाहे कुछ भी करते रहना। उसके बाद में तुम्हे हर काम की आजादी होगी। कोई तुम्हे रोकने या टोकने वाला नहीं होगा। तलाक देने के बाद तुम दूसरी शादी करने के लिए आजाद हो जाओगे।" पता

नहीं वह केवल मजाक करती है या वास्तव में नाराज होती है।

"इस जन्म में तो संभव नहीं हो सकता। इसके बारे में अगले जन्म में ही सोचा जा सकेगा। जीते जी मैं तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ूंगा। मरना ही पड़ा तो एक साथ ही मरेंगे लेकिन दूसरी शादी के बारे में तो सोच भी नहीं सकता।"

"तो फिर गुमसुम क्यों रहते हो इस तरह। तुम्हारा ठीक से न बोलना भी तो शक ही पैदा करता रहता है। मेरी उलझन बढ़ाता रहता है।" मैं भी उसे तंग करने की बात करता हूं।

"तुम अगर सुनना नही चाहती हो तो क्या मैं पागल हूं कि यूंही बकवास करता रहूं। मैं तुम्हारी पीठ से कैसे और क्यों कहूं कि तुम मेरी जान हो, तुम मेरी तरफ अगर प्यार से देखो तो मैं दिन भर यही कहता रहूंगा कि तुम्हारी आंखों की झील में डूब मरूं।ं तुम्हारी आंखों में मैं अपना चेहरा देखने की इच्छा हमेशा ही रखता हूं लेकिन मुझे हमेशा ही काली काली चटटाने नजर आती हैं और मेरा चेहरा भी चटटानों से टकरा टकरा कर लहू लुहान हो जाया करता है। तुम्हारी आंखों से आग बरसती है और

मेरा चेहरा भी झुलस जाता है। तुम्हारी आंखों की झील को मैं प्यार का समन्दर बनते हुए देखना चाहता हूं जिसमें से हमेशा प्यार का ज्वार भाटा उठकर शान्त होता रहे और तूफान आये तो सिर्फ प्यार का न कि नफरत के भंवर का। हर बात में केवल प्यार ही प्यार होना चाहिये चाहे जो भी हो नफरत किसी भी लहर में नहीं होनी चाहिये।"

"तो फिर कसम खाओं कि तुम कभी भी ऐसा नहीं करोगे।" उसे हमेशा मेरे कम या न बोलने पर शिकायत ही रहती है।

"अगर तुम यह सब बन्द कर दो तो मुझे क्या पड़ी है दूसरी शादी करने की और कसम खाने की, तुम्हे तलाक देने की, तुम्हारी सौतन लाने की। मैं तो यही चाहता हूं कि तुम सातों जन्म, केवल तुम ही मेरी सहचरी बनी रहो। केवल तुम्हारी आंखों के समन्दर में मेरे दिल की नैया डूबे, तुम्हारे प्यार के भंवर में ही मैं डूब मरूं। तुम्हारी फालतू की बातों से मेरा दिमाग खराब होता रहता है। तुम ये सब फालतू की बातें मत किया करो। इनसे परहेज करो तो रिश्तों का स्वास्थ्य हमेशा ही ठीक रहेगा। ज्यादा मिर्च मसाले वाली बातें भी मानसिक बदहजमी का कारण

बर जाती हैं। तुम हमेशा ही मेरी रहोगी और मैं सिर्फ और सिर्फ तुम्हारा। तुम्हारे सिवा किसी और को अपने जीवन में न आने दूंगा।" मेरे इस प्रकार के प्यार के शब्दों से उसके चेहरे पर थोड़ी सी मुस्कान दिखाई देने लगती है। आंखों में शरारत की चमक और होंठो पर हरकत।

"चाहती तो मैं भी यही हूं कि तुम ही सातों जन्म तक मेरे रहो, हम में कभी भी झगड़ा न हो लेकिन मैं भी क्या करूं कई बार बच्चों को लेकर, कई बार घर बार की बातों को लेकर, कई बार हमारी आपसी तकरार को लेकर ऐसा हो ही जाया करता है और उस पर दिन भी घर में कैदियों की तरह बोरियत से गुजरना पड़ता है। बोरियत और नुक्ताचीनी के कारण ही दिमाग खराब रहता है। तुम तो जब भी जी चाहे बाहर चले जाते हो, बाजार में घूम आया करते हो, सिनेमा देख सकते हो, तफरी भी कर सकते हो लेकिन मुझे तो यूंही जिंदगी काटनी पड़ेगी उम्र कैदी कर तरह। कैदी तो फिर भी कभी न कभी बरी हो सकता है लेकिन मेरी यह कैद उम्र की है जो मरने के बाद की अर्थी के साथ खत्म होगी। तब तक मुझे कैदी बनकर जीना पड़ेगा। इस कैद को अलग

होकर ही खत्म किया जा सकता है और वो जीते जी कभी हो नहीं पायेगा।"

"ये आपसी तकरार तो एक आम बात है। यदि एक चुप रहे तो तकरार बढ़ने का मतलब ही नहीं रहता। एक चुप तो सौ सुख। ठण्डा लोहा हमेशा ही गर्म को काट देता है। तुम भी ठण्डे लोहे की तरह हो जाओ। हर समस्या का यही मात्र एक हल है। हमारी समस्यायें खत्म होती रहेंगी। ठण्डा लोहा बनना सीख जाओ तो समय अपने आप ही कटता चला जायेगा और तुम्हे मालूम ही नहीं पड़ेगा कि कब हम बुजुर्गो की कतार में लगकर खड़े हो जायेंगे। हमारे बच्चे भी हमसे पूछ पूछ कर हर काम किया करेंगे। तुम कल्पना करो कि तब हम कितना खुश हुआ करेंगे। हमें उनकी बातों पर कितनी खुशी हुआ करेगी। बिना मतलब सोच सोच कर तुम अपने दिमाग तो फालतू में खराब करती ही हो और साथ में सबका मूड भी खराब होता रहता है। वैसे भी कभी कभार तकरार हो भी जाये तो ठीक है, रिश्तों का स्वाद बदलता रहता है वरना कभी कभी ये रिश्ते ही मूंग की दाल की तरह बेस्वाद हो जाते हैं। वक्त बेवक्त अगर बर्तन बजते रहें तो उनकी खनक बनी

रहती है। अगर बर्तन कभी न बजें अल्मारी में ही सजे रहे तो उनकी खनक का पता ही नहीं लगेगा। अल्मारी में पड़े हुए बर्तनों पर धूल मिटटी जम जाती है और पड़े पडे बेकार हो जाते है। यह भी पता नहीं चल पायेगा कि कौन सी खनक किस बर्तन की है। खनक क्या चीज है और खनकना क्या होता है। खनकते बर्तन ही अच्छे लगते हैं जिससे बाहरी वालों को भी पता चलता रहे कि किस घर में कितने बर्तन है, किस धातु के है और कैसे बजते है। खनकना किसे कहते है। तुम ही सोचो क्या कभी थाली को परात से, बाल्टी को गिलास से, मटके को लोटे से, पतीली को कड़छी से अलग किया जा सकता है। अगर कभी भी ऐसा किया गया तो वे अलग अलग कैसे और कितने दिन तक रह पायेंगें। बिना एक दूसरे को देखे, बिना खनके कैसे जी पायेंगे भला। वे सब के सब अपनी अपनी खनक ही भूल जायेंगे और दूसरे की खनक सुनने को तरस जायेंगे और फिर सबकी जरूरत भी तो हमेशा रहती है। आज के युग में ऐसा कोई भी इनसान नहीं जिसे कभी किसी की जरूरत न रही हो। बिना खनक के जीना भी कोई जीना है, खनकना ही जिंदगी है और जिंदगी ही

खनकना। जीवन में खनकना बहुत ही जरूरी है। मौहल्लें में जब कभी भी थाली बजती है तो उसका मतलब हर आदमी मौहल्ले का हर निवासी समझ जाता है। तुम भी थाली बन जाओ। बजना ही है तो केवल थाली बनकर बजना प्रारम्भ कर दोगी तो घर तो क्या पूरा मोहल्ला ही खुश नजर आने लगेगा। थालीको छोडकर कोई दूसरा बर्तन कभी बजे तो उसका मतलब अलग होता है।"

"मैं भी बहुत कोशिश करती हूं कि न बोलूं लेकिन तुम ही बोलो कि मैं कब तक यह सब सहन करती रहूं। कब तक चुप रहूंगी भला। कभी न कभी तो किसी न किसी बात में बोलना पड़ ही जाता है। हर बात में चुप भी तो नहीं रहा जा सकता न। कई कई बार तो बोलना मेरी मजबूरी ही होती है। वह यह सब भली प्रकार से समझती तो है लेकिन कभी कभी आदत से मजबूर हो जाया करती है।"

"मिलकर रहना है तो चुप रहने में ही भलाई है, हम सब का फायदा है। जब तुम्हे गुस्सा आये तो ठण्डा पानी पिया करो या तुरन्त एक, दो, तीन, चार गिनना शुरू कर दिया करो ताकि गुस्से से तुम अपना ध्यान हटा सको। जैसे ही गुस्सा आये वैसे ही

चला भी जाये बिना किसी नुकसान के।" मैं उसे अब खुश करने का जी भर प्रयत्न करता हूं।

"मुझसे यह सब बर्दाश्त नहीं होता। ठण्डा पानी पीकर तुम जीआ करों। मुझे तो गर्म पानी पीने की आदत है। पता है गर्म पानी सेहत के लिए कितना अच्छा होता है। "

"अच्छा हो या बुरा मुझे नहीं पता लेकिन तुम पिओ या न पिओ मुझे तो ठण्डा पानी पीकर ही गुजारा करना पडेगा। तुम दोनो के बीच में रहना है तो मुझे ही एक, दो, तीन या चार गिलास नहीं पूरा मटका ही पीना पड़ेगा ताकि तुम दो चक्की के दो पाटो के बीच में मैं बेचारा मुफ्त में न पिस सकूं। मुझ पर कबीर का दोहा लागू न हो सके। पानी में रहना हैे तो मगर से दोस्ती तो करनी ही पड़ेगी। चाहे वो कितनी भी नुक्सानदायक क्यों न हो।"

"यहां तो पूरा का पूरा तालाब ही घडियालों और अजगरों का है। जिसे देखो वो ही नाग की तरह फंुफकारता है और अजगर की तरह बिना डसे कस कर मार देना चाहता है। बिना लाठी तोड़े संाप मारने की तरकीब आजमाना चाहता है।"

”तुम सपेरा बन जाओ, डिस्कवरी चैनल देखा करो और हर प्रकार के सांप या अजगर को वश में करके विष और जहरीले दांत निकालने की कला सीख लो फिर देखो वही विष तुम्हारे लिए कितना फायदे मंद हो जायेगा। कितनी ही बिमारियों का इलाज भी कर देगा। समय आने पर सब संाप और अजगर तुम्हारे दोस्त बन जायेंगे।” मैं उसकी हर बात को मजाक में टालने का हर संभव कोशिश करने लगता हूं।

इतनी सारी बातें होते होते वह धीरे धीरे मेरी तरफ करवट बदलना प्रारम्भ कर देती है, अपने पांव से मेरे पांव पर छेड़छाड़ करने लगती है। लगता है अब उसका जी कुछ हल्का हो गया है ठीक हो चुका है। नाराजगी का जहर उतरने लग रहा है, लगता है जैसे कि अब गुस्सा थूका जा रहा है। उसकी हालत अब सामान्य होती जा रही है। वरना जहां पहले उसकी जुबान से पत्थर बरस रहे थे वही अब पत्थरों का स्थान फूलों ने ले लिया है, स्वर में रूखापन बदलकर मिठास आने लगती है। वातावरण में मदहोशी छा रही है।

"वैसे तुम भी तो बहुत अच्छे हो परन्तु जब मेरी तरफ ठीक से ध्यान नहीं देते तो मुझे बहुत बुरा लगता है और शक होने लगाता है और कई कई बार तो ऐसा महसूस होने लगता है जैसे कि तुम मेरी उपेक्षा कर रहे हो। जैसे कि इस घर में मेरा कोई नहीं है या मैं किसी होटल या धर्मशाला में रह रही हूं। केवल तुम ही तो मेरे हो जिससे मैं अपने दिल की बात कह सकती हूं। तुम ही न सुनो तो तुम ही बताओ मैं अपनी बात किससे जाकर कहूं। बाकी सब तो यहां पर जैसे पत्थर के बुत्त हैं जिनमेंे से किसी में भी दिल नाम की चीज नहीं है। किस बुत पर अपना माथा पटकूं। अगर दिल वाले होते तो मेरी बात अवश्य ही समझते। इन्ही बातों को तो सोचकर कई बार दिल में आत्महत्या करने तक की बात आ जाती है।" अब उसका मूड कुछ कुछ सुधर रहा है।

"जानेमन। अच्छी तो तुम भी बहुत हो परन्तु जब बिना मतलब बोलती हो, भाषण देती रहती हो या अकारण ही बच्चों को डांटती पीटती रहती हो तो मुझे भी कितना बुरा लगता है यह तुम कभी भी नहीं सोचती हो। घर का वातावरण बिल्कुल

चिड़ियाघर की तरह हो जाता है। कई बार जी में आता है कि तुम दोनो में से किसी एक को पागलखाने में भिजवा दूं या दाखिल करवा दूं या इंतजाम करवा देना चाहिये ताकि झगड़े की जड़ को ही खत्म किया जा सके। बिजली के दो चार झटके लगवाने चाहिये। दिमाग ठिकाने आ जायेगा तुम दोनो का।"

"इससे बढ़िया क्या बात हो सकती है। अपनी मां को ही दाखिल करवा दो। उसे ही झटके लगाने की जरूरत है। मेरा दिमाग तो बचपन से ही ठीक है।" अब उसे मजाक सूझने लगा है।

"हर पागल भी तो यही कहा करता है। ये तो मुझे ही पता लगाना है कि तुम दोनो में से वास्तव में कौन ज्यादा पागल है। किसका दिमाग ज्यादा खराब है। किसे झटके देने की जरूरत है। तुम्हारे साथ मुझे भी तो पागल होना पड़ेगा न। या फिर यह पता लगाना पड़ेगा कि खराब हो चुका दिमाग कैसे कैसे और कितने दिन में ठीक किया जा सकता है।" अब मुझे भी उसकी तरफ करवट बदलने को मजबूर होना पड़ रहा है। मेरी अंगुलियां उसके गालों को टटोलती हुई आंखों तक पहुंचने की कोशिश करने लगती हैं। आंसुओं की चिपचिपाहट महसूस करने की

कोशिश करती हैं। वैसे तो उसकी आंखों से बहने वाले आंसू काफी पहले ही सूख चुके हैं परन्तु फिर भी जैसे जैसे बचे खुचे आंसू पोंछे जाने लगते हैं, गालों पर अंगुलियां चलकर सहलाने लगती हैं वैसे वैसे वह मेरे करीब और करीब सरकती जाती है। बिल्कुल चिपट कर आलिंगनबद्ध हो जाती है और मुझें उसकी गर्म गर्म सांसे महसूस होने लगती है।

"मुझे सब कुछ मंजूर है लेकिन तुम्हारा इस तरह चुपचाप रहना, कई कई दिन तक न बोलना, रूठे रहना बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता। तुम कभी भी ऐसे बर्ताव मत किया करो।" उसकी आंखों में से दुबारा आंसू छलकने लगते हैं। उसकी अंगुलियां भी मेरे माथे पर से गुजरती हुई बालों में घूमने लगती है।

"ठीक है बाबा। मैं कान पकड़ता हूं। आज से क्या अभी से वायदा करता हूं। कसम खाता हूं। मुझे भी सब कुछ मंजूर है लेकिन शर्त ये है कि बदले में तुम्हारा चेहरा भी गुलाब की तरह हमेशा खिला हुआ रहना चाहिये न कि कभी कभी। मुरझाया हुआ चेहरा देखना मुझे भी अच्छा नहीं लगता। तुम हमेशा बन-ठन कर रहा करो बिजलियां गिराती रहा करो। चाहे

तो मुझसे अभी पांव पकड़वा लो।" अब मुझे भी उसकी चापलूसी करने पर उतारू होना पड़ता है।

"अरे अरे ये क्या कर रहे हो। बस बस रहने भी दो। पांव पकड़ने की ड्यूटी तो मेरी है तुम्हारी नहीं। तुम मेरे दिल के सरताज हो और तनमन के मालिक।" इतनी सारी बातें होते होते वह मेरे माथे पर प्यार से चुम्बन अंकित कर देती है। अपनी बाहों में कस लेती है और समझोते की खुशी मेरी आंखों मे से भी आंसू बन कर छलकने लगती है। शक और विवाद की तमाम दीवारें पल भर में गिर जाती हैं। सारे गिले शिकवे पल में दूर हो जाते है।

"और तुम मेरे दिल की मल्लिका। हमेशा मल्लिका बनकर ही रहो, जीवन भर।" मेरी बाहें भी उसे आलिंगन में कसने को तैयार हो रही हैं, होंठ चूमने को बेकरार। काली स्याह रात गुलाबी हो चुकी है। लगता है जैसे आज ही असली सुहागरात है। चुम्बनों का आदान प्रदान आरम्भ होने लगता है। एक, दो, तीन, चार पांच और कभी न समाप्त होने वाला सिलसिला।

अब में वास्तव में लगने लगा है कि बरसों से मेरे घर की पत्थर या लोहे में परिवर्तित हुई यही

खिड़की फिर से पीतल में, पीतल से चांदी में, चांदी से सोने में बदल गई है और बाकी का घर सोने का महल। यदि वह हमेषा ही इसी तरह से सुनहरी खिड़की बन कर रहना सीख जाये तो मैं किसी दूसरे के घर की खिड़की की तरफ देखने, सोचने और पाने की इच्छा ही क्यों करूं भला। किसी भी दूसरी खिड़की को देखना बुरा नहीं है जितना कि उसे पाने की तमन्ना करना या पा लेना।

(उस सभी खिड़कियों को समर्तित जिनका रूप चिरकाल तक सुनहरा, अपरिवर्तनीय, किसी भी प्रकार के मौसम में अप्रभावित रहना और जो हमेषा ही आकर्शित करते हुए रहस्यमयी रहेंगी और जिनका राज कोई भी कभी भी न जान सकेगा)

3.बन्द घड़ी की मौत

मशहूर मेडिकल कॉलेज और हॉस्पिटल।

पहला तल्ला।

वार्ड नम्बर चार।

बिस्तर नम्बर दो।

नाम कुछ भी हो, धाम कुछ भी हो, काम भी चाहे कुछ हो या ना हो। रोगी कहीं से भी, देश के किसी भी कोने से सम्बन्ध रखता हो, किसी भी सम्प्रदाय, किसी भी जाति, किसी भी धर्म, किसी भी शहर, किसी भी गांव, किसी भी घर, किसी भी लिंग या किसी भी आयु का हो, कितनी भी शिक्षा प्राप्त हो, कैसी भी नौकरी करता हो, कितना भी अनुभवी हो, किसी भी हैसियत का मालिक हो यहां पर वह केवल और केवल बिस्तर नम्बर से ही जाना जाता है, यहां के कर्मचारियों द्वारा पुकार जाता है।

पिछले काफी दिनों से मैं भी यानि कि इस बिस्तर नम्बर दो का रोगी एक विशेष घूमने वाले बिस्तर पर लिटाया जाता है। मैं अपने शरीर का हर प्रकार का नियन्त्रण शत-प्रतिशत खो चुका हूं लेकिन

मस्तिष्क का नियन्त्रण सही-सलामत है वरना मैं यहां की बजाय किसी पागलखाने में होता और यह सब न सोचता जो पता नहीं कब से मेरे दिमाग में हलचल मचाये हुए है। हमेशा मेरे पीछे ही लगा रहता है, कभी चैन ही नहीं लेने देता और जो कई प्रकार की बीमारियों का जन्मदाता है। शारीरिक रूप से मैं अब हर काम के लिये असमर्थ हूं और पूरी तरह से लोगों की मेहरबानियों पर निर्भर हूं। उनके हाथों की कठपुतली हूं। शायद मेरी रीढ़ की हड्डी की कोई डिस्क अपने स्थान से इधर-उधर खिसक चुकी है। मेरी हालत शिकंजे में कसी हुई उस बबूल की सख्त लड़की जैसी होकर रह गई है जिस पर बढ़ई कभी भी मनमाने ढंग से रदा नहीं लगा पाता और अब बड़ी मुश्किल से मैं उसके हाथ लगा हूं जैसे कि वह मेरा सारा-का-सारा खुरदरापन दूर कर देना चाहता हो। मुझ पर भी दुख लगातार रंदा लगाने में लगा हुआ है ताकि मैं भी लकड़ी की तरह रंदा लगवाकर इतना अधिक चिकना हो जाऊं और गमों के, मुश्किलों के हाथों में से मेंढ़क की तरह फिसल सकूं। लेकिन अगर उसी लकड़ी पर जरूरत से ज्यादा रंदा लग जाये तो वह किसी भी काम की न रहकर बेकार

हो जाती है और बढ़ई को लकड़ी खराब हो जाने का दुख होता है। फिर नई लकड़ी तलाश करनी पड़ती है। नये सिरे से रंदा लगाना पड़ता है। लगाये जाने वाले रंदे की मात्रा का भी ध्यान रखना पड़ता है जिससे दूसरी बार लकड़ी खराब न पाये, ठीक-ठीक रहे। यहां पड़े-पड़े अक्सर मैं दिन भर यही सब कुछ सोचता रहता हूं कि मुझ पर भी दुख का रंदा कितनी मात्रा में कितनी देर तक लगाया जाना चाहिए, कितनी चिकनाहट बाकी रह जानी चाहिए ताकि मैं भी ज्यादा रंदा लग चुकी लकड़ी की तरह ठुकराया न जा सकूं। किसी-न-किसी के द्वारा काम में लिया जा सकूं। अपनों के द्वारा भुलाया न जा सकूं। मैं शहतूत की लकड़ी की तरह ज्यादा नरम कभी नहीं बनना चाहता। भगवान मुझे भी बबूल की लकड़ी से भी ज्यादा सख्त रखे ताकि दुख को मुझ पर रंदा लगाते हुए हुए जोर तो आये और वह भी जान सके कि रंदा कैसे लगाया जाना चाहिए और मैं क्या चीज हूं।

मेरे सामने की दीवार पर, मेरे बेड के बिल्कुल पास सटी हुई दीवार घड़ी लगी हुई है जो न जाने कितने समय से बन्द पड़ी हुई है। भगवान जाने यह

बन्द घड़ी भी कितने ही रोगियों की मौत का कारण बनी होगी क्योंकि हर रोगी के लिये यहां पर बिताई हुई हर घड़ी मौत की घड़ी होती है और घड़ी की मौत। मैं यह तो नहीं जानता कि यह घड़ी मानवीय है या अमानवीय। स्वचालित। चाबी भर कर चलाने वाली है या बैटरी वाली। खराब है या सही। खराब है तो सही क्यों नहीं करवाई जाती। सही है तो बन्द क्यों पड़ी हुई है। सेल क्यों नहीं डलवाया जाता जिससे रोगियों को चलती हुई घड़ी देखकर जीने की आस बनी रहे और अगर ठीक है तो बन्द रहने का क्या कारण है। बैटरी लगाई गई है तो फिट हुई है कि नहीं अर्थात् इस घड़ी के बन्द रहने, न चलने, कोई समय न दिखाने का क्या कारण हो सकता है ? मैं भी तो यही जानना चाहता हूं जो अभी तक मेरी समझ से बाहर की बात है और पता नहीं चल रहा। समझ में नहीं आ रहा। कारण कुछ भी रहा हो लेकिन यह घड़ी तो बन्द ही है और न जाने कब तक बन्द रहेगी। क्यों ? यही चलती हुई, कोई-न-कोई गलत या सही समय दिखाती हुई घड़ी ही तो रोगियों की धड़कन है, इसी की टिक-टिक के साथ सबकी धड़कन चलती है। घड़ी में अगर बैटरी डली

रहे, ठीक रहे, चलती रहे, बराबर समय दिखाती रहे तो मुझ जैसा रोगी भी इस चलती हुई घड़ी को देख-देखकर, दिन-रात गिन-गिन कर समय काटता रहेगा वरना यही समय कभी तीखी तलवार बनकर मुझे काट डालेगा। और यह घड़ी मुझ जैसे कितने ही रोगियों को कटता हुआ देखती रहेगी। उपचार काल में अगर यह घड़ी बन्द हो जाये तो रोगी अपना वक्त कैसे काटे ? समय अगर ढ़ंग से कट जाये तो ठीक वरना यही समय कभी खंजर की तरह चलता है, इंसान को चीर देता है। यही घड़ी ही तो सबकी आशा की किरण है जो इस वार्ड रूपी नरक में हर रोगी को एक जीवन की तरह दिखाई देती है। रोगी तो यहां पर नरक ही भोग रहे हैं और यहां के कर्मचारी भी यमराज और यमदूतों की सेना जो बात-बात पर गाली-गलौच, झगड़ा, चोरी आदि भी करने से बाज नहीं आते, चोरी करके भी सीनाजोरी करते है और फिर अब तो लगता है मेरी दशा भी बन्द हुई घड़ी जैसी होकर रह गयी है। जब कभी भी भूले-भटके निगाह इस पर जाती है तो तीनों सुईयां खड़ी ही मिलती है, घड़ी बन्द ही दिखाई देती है। कोई भी समय नहीं दिखाती जिससे न तो समय का आभास

हो पाता है और न ही पहर का। प्रातः पूर्वाह, मध्याह, अपराह और रात्रि आदि का। और फिर इस बात का पता भी नहीं लगता कि आज क्या दिन और क्या वार है, क्या दिनांक है। नर्सों या डाक्टरों के आने से समय का आभास होता है। डॉक्टर लोग भी पूरी कोशिश में हैं कि मेरे बदन की बन्द घड़ी में बैटरी डाल देगें, फिर से चालू कर देंगे और शायद मैं फिर से ठीक की जा चुकी घड़ी की तरह चल-फिर सकूगां। सुइयों की तरह चक्कर काटते हुए जीवनभर जीवनकाल पूरा कर सकूगां लेकिन ये लोग अभी प्रयत्नशील है, कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हैं। मुझे उन पर भरोसा है। भगवान की शक्ति पर विश्वास है, श्रद्वा है। उन्हें विश्वास है कि नहीं यह मैं नहीं जानता। हां, वे अपनी तरफ से पूरी कोशिश में हैं। उन्हें भी भगवान पर पूरा भरोसा होना चाहिए क्योंकि वहीं सबसे बड़ा और शक्ति शाली मिस्त्री है और सारी-की-सारी बन्द और चालू घड़ियों का मालिक। वह जिसे चाहे चलने दे जिसे चाहे बंद कर दे। सब उसीकी इच्छा पर निर्भर है।

वैसे तो मैं चौबीसों घण्टे ही जागकर बिताया करता हूं क्योंकि रोगी या बेकार आदमी को हमेशा

गहरी और भरपूर नींद कभी नहीं आती। नींद लाने के लिये थकावट होनी चाहिए, थकावट के लिये भागदौड़, भागदौड़ के लिये काम-धन्धा, काम-धन्धे के लिये पैसा, पैसा कमाने के लिये समय और समझने के लिये दिमाग का होना बहुत ही जरूरी है। पैतृक सम्पति न हो तो दिमाग का होना बहुत ही जरूरी है। मेरे पास तो ये दोनों है लेकिन भागदौड़ के लिये शरीर जवाब दे चुका है। उसने अब भागदौड़ करने से मना कर दिया है। फालतू और ज्यादा भागदौड़ करने का यही परिणाम होता है जो हमें कई बार सफर के दौरान हुई बस दुर्घटनाओं से दो-दो हाथ भी करवा देता है। कभी बस नदी में गिर जाती है, कभी बस में बम फट जाता है, कभी यात्रियों की हत्या हो जाती है, कभी खाईयों में लुढ़क जाती है तो कभी सामने से आते हुए वाहनों से भिड़ जाती है। कोई एट द् स्पोट मर कर इस नरक से छूट जाता है, कोई उम्र भर हाथ-पैर तुड़वा कर सजा भोगता है। मगर कोई दुर्घटनाओं में मुझ जैसा बचा हुआ हॉस्पिटल के किसी बिस्तर पर पड़ा हुआ दिन गिनता रहता है, भाग्यशाली यात्री कहलाता है लेकिन मौत उसे कितना सताती है कोई नहीं जानता। मौत

को हम बस जानते हैं लेकिन मानते नहीं क्योंकि मौत कभी भी दिखाई नहीं देती। कई बार जब मौत दिल के द्वार पर दस्तक देती है तो भी नहीं मानते, क्योंकि मौत का सीधा सम्बन्ध तन से है। इसलिये लेटे-लेटे में यही हिसाब लगाता रहता हूं। जागने और सोने की गणना करता रहता हूं।

चिड़ियों की चहचहाहट, खिड़कियों में से गुजरती हुई सूर्य की हल्की लाल-लाल किरणों से उत्पन्न हुई रोशनी, रात भर से जगमगा रही बत्तियों को बन्द कर देने से सफाई कर्मचारियों की भागदौड़, प्रशिक्षित और प्रशिक्षु नर्सों की चहल-पहल, प्रशिक्षण तथा वार्ड इंचार्ज आदि की मिली-जुली आवाजों से आभास हो रहा है कि बाहर उजाला हो चुका है, सुर्योदय हो रहा है, नया दिन जाती हुई रात्रि के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है और कह रहा है कि जागो ऐ सोने वालो, उठकर देखो तुम्हें गाड़ी बुला रही है इस नरक से जितना जल्दी हो सके पिण्ड छुड़ा लो वर्ना यहां के यमदूत ऊपरवालें यमदूतों को बुला लेंगे।

अपना सिर मैं एक निश्चित सीमा तक तो घुमा सकता हूं परन्तु ज्यादा नहीं। मैं केवल सामने

देख सकता हूं जहां पर बन्द पड़ी हुई दीवार घड़ी लगी हुई है जिसे हमेशा बन्द देखकर बार-बार मैं हतोत्साहित हो जाता हूं, मूड खराब हो जाता है, यमदूत दिखाई देने लगते हैं। पूरे वार्ड का हल्ला-गुल्ला, वार्तालाप, शोर-शराबा मेरे कानों की सीमा में आ ही जाता है ठीक किसी राडार की तरह जिससे पता चलता रहता है, वार्ड के बाकी के बिस्तरों के रोगियों और उनके सम्बन्धियों द्वारा क्या-क्या कार्यवाहियां सम्पन्न की जा रही है, किससे कौन-कौन मिलने आया है, कौन किससे मिलकर वापस जा रहा है। किस बिस्तर पर कैसा माहौल है।

बाकी रोगियों के सम्बन्धियों ने दैनिक क्रियाकलापों का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया है जैसे कि हरे पर्दों की ओट में दांत मंजन-कुल्ला। पूरे बदन की साफ-सफाई, डिटोल साबुन या डिटोल मिले हुए पानी से मुंह-हाथ धुलाकर, स्पिरिट लगाकर बदन को कीटाणुरहित बनाना फिर कोई भी टैलकम पाउडर लगाकर सुगन्धित वातावरण बनाना ताकि पुरे वार्ड में फैली हुई दवाईयों और रसायनों आदि की गंध को कम किया जा सके और अपने चारों तरफ की सफाई। जैसे कि सम्बन्धी मेरा भी सफाई का कार्य कर रहे

है। सुबह कुल्ला करने से लेकर रात-सोने तक के प्रत्येक कार्य के लिये मैं कम-से-कम चार आदमियों पर आश्रित हूं जो अंगरक्षकों की तरह मेरी सेवा में जुटे हैं जैसे कि अब मैं कोई अति विशिष्ट व्यक्ति हूं। शारीरिक रूप से मैं किसी नवजात शिशु की तरह हो चुका हूं और इन सबकी सेवाओं से ठीक महसूस नहीं करता। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता कि कोई मेरा कार्य करे। मुझे तब तो बहुत ही लज्जा महसूस होती है जब मैं उन्हें अपना मल-मूत्र धोते हुए देखता हूं और तब केवल मैं छत की तरफ ही देखता रहता हूं। जब सब लोग इस प्रकार के कितने ही कार्य करते है, करते ही रहते है। इस बुरी हालत में मैं कर भी क्या सकता हूं उन्हें इस प्रकार के कार्य करते हुए देखकर। मेरा जी तो बहुत दुखी होता है लेकिन मजबुरी है वरना किसी भी अधेड़ व्यक्ति का कार्य कोई दूसरा करे कितनी बुरी और दुख की बात है। इस समय मेरे शरीर की सफाई की जा रही है। कोई ठण्डा पानी ला रहा है। कोई साबुन लगा रहा है, कोई तौलिया गीला करके साबुन साफ कर रहा है, कोई साबुन वाले पानी को बदलने गया है, कोई पेशाब के बर्तन को खाली करने गया है आदि-आदि।

जिस विशेष घूमने वाले बिस्तर पर मुझे लिटाया गया है वह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि जब भी कोई नया रोगी, उसका या मेरा सम्बन्धी वार्ड में इस तरफ आता है तो स्थिति देखकर दंग रह जाता है, आश्चर्य से दांतो तले अंगुलिया दबा लेता है और उसे मेरी इस स्थिति में पंहुचने के कारण जानने को विवश होना ही पड़ता है। यह बिस्तर इस प्रकार से बनाया गया है कि अपनी मर्जी से मैं कुछ भी नहीं कर सकता। केवल सांस ही धीमे या तेज ले सकता हूं बिल्कुल भी हिलडुल नहीं सकता। करवट नहीं बदल सकता। दुर्धटना की प्रकृति के अनुसार मेरा इस हाल में लेटे रहना अत्यावश्यक है। डॉक्टरों की सलाह के अनुसार हर दो घण्टे के बाद मेरा पासा पलटा जाता है। सबसे पहले बदन पर सफेदी जैसी धुली हुई चादर बिछाई जाती है, चादर के ऊपर गदेला रखा जाता है, गदेले के ऊपर 2 फुट चौड़ा और 6 फुट लम्बा फ्रेम रखा जाता है। इतना ही सामान ठीक मेरे बदन के नीचे भी रखा जाता है। पासे के हिसाब से मूत्र का वेग भी इधर-उधर किया जाता रहता है। इतना कुछ करने के बाद सबके चारों तरफ एक बेल्ट बांधा जाता है।

पासा पलटाया जाता है। माथा नीचे की ओर तथा पीठ ऊपर की तरफ हो जाती है। बेल्ट खोल दी जाती है। फ्रेम हटा दिया जाता है। गदेला उठाकर चादर आधी मोड़ दी जाती है ताकि बदन के नीचे के हिस्से में आया हुआ पसीना सूख सके। मैं बिल्कुल उल्टी स्थिति में हो जाता हूं। कभी पीठ ऊपर होती है तो कभी सीना। 24 घण्टों यही क्रम चलता रहता है बार-बार। पासा ऊपर-नीचे पलटा जाता है। क्रियायें दोहराई जाती है। दोनों चादरों के बीच में बदन पूरी तरह निर्वस्त्र है जिसे बिना वस्त्र रखना शायद यहां की परम्परा है। मेरे सिर के ठीक दोनों कानों के ऊपर सुराख किये गये हैं, सुराखों में स्टील की कैंची जैसी पत्ती लगी है, पत्ती के साथ स्टील की बारीक तार लगी है। तार के सिरे पर लगभग 10 किलोग्राम का भार लटक रहा है शायद मेरी रीढ़ की हड्डी को खींचा जा रहा है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि रीढ़ की हड्डी को 42 दिन तक खींचने से इसके अन्दर की डिस्क अपने स्थान पर वापस आ सकेगी।

बदन के निचले हिस्से की संवेदनशीलता पूर्णतया समाप्त हो चुकी है। चेहरा, गला, छाती, पीठ और कमर आदि पर चल रहे हाथों से पता

चलता है कि दूसरी बार मेरे शरीर की सफाई की जा रही है। पानी लगने से ठण्डा-ठण्डा महसूस हो रहा है, हाथों पर साबुन लगाकर पोंछा जैसे लगाया जा रहा है। फिर पानी से साफ करके स्पिरिट लगायी जा रही है। स्पिरिट सूखने के बाद सुगन्धित पाउडर छिड़का जा रहा है ताकि बदबू न रहे, पसीना सड़ न जाये। चादरें बदली जा रही है। इधर टैस्ट करवाया जा रहा है। केवल दो सफेद चादरों में लिपटा हुआ मैं अपना लोहे जैसा बुरा वक्त काट रहा हूं। कभी छत पर चल रहा पंखा देखकर, कभी बन्द पड़ी हुई घड़ी की सुईयों के बारे मे सोचकर, कभी मेरे अपने कारणों को सोच-सोचकर, कभी यहां के रोगियों के बारे में सोचकर और कभी यहां के डॉक्टरों, कम्पाउण्डरों, नर्सों, सुरक्षा कर्मचारियों, सफाई कर्मियों या अन्य सभी प्रकार के कर्मचारियों के घटिया व्यवहार को लेकर कि ये सब किसी भी रोगी और उसके साथ वाले सम्बन्धी का कितना दर्द समझते है, कितने सहायक है। कितनी बेदर्दी से पेश आते है। इन लोगों में जरा सी भी मानवता नाम की चीज नहीं है जबकि यह हॉस्पिटल मानवता को पूर्णतया समर्पित होने का दावा करता है और दूर-दूर तक

मशहूर है। कर्मचारियों को अपना-अपना स्टेटस छोड़कर केवल मानव बनकर, मानवता के लिये काम करना चाहिए, मानवता के लिये ही जीना और मरना चाहिए, मानवता से पेश आना चाहिए। यहां का प्रत्येक कर्मचारी मशीन बनकर रह गया है। लगता है जैसे कि वार्ड में कर्मचारियों के स्थान पर रोबोट भेजें जा रहे है जो कभी भी मानव की तरह संवेदनशील नहीं हो सकते, किसी रोगी की व्यथा, समस्या नहीं समझ सकते, किसी मानव की तरह सोच नहीं सकते, किसी का दुख भी महसुस नहीं कर सकते, केवल काम ही मानव से अधिक सम्पादित कर सकते है। मानव की तरह सोच नहीं सकते। मानव मानव ही होता है और रोबोट नहीं बन सकता। रोबोट केवल मशीन ही होता है जो कभी भी मानव की तरह नहीं बन सकता, सोच नहीं सकता, मानव जैसा व्यवहार नहीं कर सकता। इनमें से कोई यहां पर एक्स-रे कर रहा है, कोइ सुई लगा रहा है, कोई किसी के जख्मों को बेदर्दी से पोंछ कर साफ कर रहा है। फलस्वरूप पूरा वार्ड चीखों से झनझना रहा है। चीखें सुनना इन्हें शायद अच्छा लगता है। बुरा भी जैसा भी लगता हो ये नहीं समझते।

अब मुझे नाश्ता करवाया जा रहा है। बाकी लोग भी नाश्ते के लिये चले गये हैं। इनमें से शायद एक ही वापस आकर मेरे पास रह सकेगा या फिर कंही उसे भी यह कहकर बाहर ही रोक दिया जायेगा कि अपनी समस्या डॉक्टर को बताने के लिये मेरे पास भी जुबान है, मैं भी सब कुछ कह सकता हूं। अब लगता है शीघ्र ही प्रातः के आठ बजने का समय होने को है। यहां मेरे पास ही वार्ड इंचार्ज, प्रशिक्षित, प्रशिक्षु नर्सों के साथ प्रशिक्षक प्रार्थना के लिये तैयार है। सारा आपसी वार्तालाप बन्द करवा दिया गया है। वातावरण बिल्कुल शान्त होने का इन्तजार किया जा रहा है ताकि प्रार्थना सम्पादित की जा सके और धर्म का प्रचार किया जा सके। फालतू लोगों को वार्ड में से बाहर भेजा जा रहा है। पूरी टीम हर रोगी के पास जाकर हालचाल पूछ रही है, सबके दैनिक चार्ट देखे जा रहे है। डॉक्टरों के राउण्ड से पहले ही यह कार्य निपटा लिया जाता है ताकि किसी को किसी भी प्रकार की शिकायत का मौका न मिलें। मेरा पासा पलटा जा रहा है। वार्ड इंचार्ज किसी को भी अन्दर आने की छूट नहीं दे रहा है, उन्हें तुरन्त बाहर की तरफ ही लौट जाने का आदेश दे रहा है और बाहर

न जाने की सूरत में सुरक्षा गार्ड से धक्के मार-मार कर बाहर भिजवा दिये जाने की धमकी भी दे रहा है यदि वे लोग उसके कथनानुसार या स्वेच्छा से बाहर जाने का नाम नहीं लेते तो लोगों के पास बाहर जाने के अतिरिक्त कोई और विकल्प भी नहीं है सो उन्हें बाहर जाना ही होगा। वरना ये वार्ड इंचार्ज उन्हें बाहर निकालकर ही दम लेगा जो कि वह बात-बात पर प्रेस्टिज पाइण्ट बना लेता है। यह उसका हठ भी है। उसकी जिद के आगे किसी की भी नहीं चलती, रोगी की भी नहीं। लोग बाहर जाना नहीं चाहते और यह उन्हें यहां पर रहने नहीं देना चाहता। आखिरकार लोगों को जाना ही पड़ता है। रोगी अगर चाहे भी तो नहीं, उसके सम्बन्धियों को अन्दर रहने ही नहीं दिया जायेगा। उन सबकी दाल किसी भी सूरत में नहीं गल पायेगी। साथ ही रोगी की सेवा और देखभाल के लिये प्रशिक्षु नर्सों की देख-रेख का बहाना बनाया जायेगा। उसका दिल पता नहीं किस चीज का बना हुआ है, जिस पर किसी की भी, किसी भी प्रकार की प्रार्थना रूपी आंच का कोई असर नहीं होता। प्रार्थना सुनकर बिल्कुल भी नहीं पिघलता। पता नहीं कि ये व्यक्ति इन सबको इतना परेशान

क्यों करता रहता है। सुरक्षा-कर्मी भी यहीं घूम रहें है अपनी ड्यूटी निभाने के लिये परन्तु उनकी वर्दी का दुरूपयोग किया जा रहा है, वार्ड इंचार्ज द्वारा रोगियों के सम्बन्धियों को तंग करने के उद्देश्य से। अब मैं थोड़ा-थोड़ा सिर घुमाकर देख सकता हूं। फालतू और अनावश्यक लोग सिर को झुकाये बाहर को धकेले जा रहे हैं घिरे हुए या आत्मसमर्पित सैनिकों की तरह जिनके सारे हथियार यहां पर आकर बेकार सिद्व हो जाते है, हिम्मत जवाब दे जाती है, जिन्हें विवशतापूर्ण आत्मसमर्पण करना ही पड़ता है। वार्ड पूर्णरूप से खाली हो चुका है केवल नर्सों की फुसफुसाहट या रोगियों की इक्का-दुक्का चीखें कभी-कभार सुनाई दे जाती हैं। किसी के पट्टियां की जा रही है, किसी के जख्मों को हाइड्रोजन से साफ किया जा रहा है, किसी को इन्जेक्शन दिया जा रहा है, किसी का रक्तप्रवाह चैक किया जा रहा है, किसी का भुखार देखा जा रहा है। मेरे साथ के बिस्तर पर पड़े हुए रोगी की चीखें हमेशा ही सुनाई देती रहती है। लगता है कि जैसे मेरे ही किसी सताये हुए सम्बन्धी की है जो कानों के पर्दे फाड़ती है। शायद उसकी टांग ही काट दी गई है। वार्ड के दूसरी तरफ

से भी अक्सर इसी तरह की चीखें सुनाई दिया करती है और यहां का वातावरण देखकर, हर अन्याय महसूस कर, किसी कसाईखाने का आभास होता है जहां पर बकरे काटे जा रहे होते है और लोग मांस खरीदने के लिये अपनी बारी का इंतजार कर रहे होते है। यहां पर बकरे की जान की कोई कीमत नहीं होती केवल मांस ही ऊंचे दामों पर बिकता है। मैं हमेशा ही भगवान से प्रार्थना करता रहता हूं कि हे भगवान किसी दुश्मन को भी इस तरह के वातावरणमें मत लाना, किसी को भी यहां आकर रहने के बुरे दिन मत दिखलाना और अगर किसी को आना भी पड़े तो एक दिन में ही वापिस भिजवा देना क्योंकि यहां के लोगो का व्यवहार देखकर रोगी अपना दुख भूलकर इन्हें बाहर जाता हुआ देखता रहता है और बाहर जाते हुए लोग रोगी से कहीं अधिक दुखी होते रहते है। यहां के लोग यमदूतों से भी बुरे है। सोते-जागते मेरी आंखे अक्सर बंद रहती है।

"हैलो भई। बिस्तर नम्बर दो। गुड मोर्निंग। कहो कैसे हो ?"

जैसे ही मैं आवाज सुनकर अपने सिर के ऊपर की तरफ देखने की कोशिश करता हूं कि प्रशिक्षक अपनी पूरी टीम के साथ नजर आता है। उसके साथ चार-पांच नर्से हैं किसी के हाथ में बी.पी. चैकर, किसी के हाथ में थर्मामीटर, किसी के हाथ में इन्जेक्शन, किसी के हाथ में पानी का गिलास जो दवा देने के काम में आता है, किसी के हाथ में पानी का गिलास जो दवा देने के काम आता है, किसी के हाथ में पानी का तसला जो सफाई के प्रयोजन से लाया जाता है। बाकी सदस्य मेरा रोटीन चार्ट देखते है। मेरे खाने-पीने का हिसाब, पेशाब की रिपोर्ट, बुखार की रिपोर्ट, दवाओं की उपलब्धता और उपचार आदि का मुआयना किया जा रहा है।

"गुड मोर्निंग सर।" मैं जवाब देना चाहता हूं लेकिन कमजोरी के कारण मेरी आवाज निकल नहीं पाती। बहुत ही धीमी-सी होती है बिल्कुल फुसफुसाने जैसी।

"कैसे हो भई। क्या बात है कुछ लेते हो कि नहीं।" वह पुनः अपना सवाल दोहराता है। इस दौरान मैं अपनी समस्या के बारे में सोचता हूं। फिर अगले ही पल सोचता हूं कि कहूं या न कहूं।

"खाने-पीने की रिपोर्ट आपके सामने है सर। जितनी भी इच्छा होती है लेता ही रहता हूं फिर भी कमजोरी कुछ ज्यादा ही है।" मैं दलील देता हूं।

"अब बुखार कैसा है ? कम है या ज्यादा।" वह फिर पूछता है।

"दिन में बुखार काफी कम रहता है सर। लेकिन रात में तो 104 डिग्री से भी पार चला जाता है। कोई ऐसी दवा दीजिये ताकि ये कम ही रहे, ज्यादा न हो रात भर मैं बुखार से पीड़ित रहा। मेरे साथी लोग पूरी रात बर्फ लाते रहे, ठण्डे-ठण्डे पानी की पट्टियां लगातार करते रहे। पहरेदारों की तरह मेरे पास बैठे रहे। बुखार में पता नहीं मैं क्या-क्या बड़बड़ाता रहा था। बिल्कुल भी होश में नहीं था। इन्जेक्शन भी दिये, फिर भी बात नहीं बनी। अनीमा की तरह से दवा देनी पड़ी। पिछले कई दिनों से यही चल रहा है।" बात पूरी बताते-बताते मेरा कण्ठ सूखने लगता है, आंखे खुल नहीं पा रही हैं। हाथ-पैरों की संवेदनशीलता यदि समाप्त न हो गई होती तो मैं उसे बताता कि रात भर हाथ-पैर किस तरह से टूटते रहे थे, दर्द होता रहा था।

"देखा भई। अगर तुम हमारी इच्छा से खुराक लेते रहोगे तो अच्छा रहेगा वरना अपनी इच्छा से कम खुराक लेने के कारण बुखार तुम्हें इसी तरह सताता रहेगा। रही बात बुखार की तो यह हर रोगी को होता ही है किसी को कम किसी को ज्यादा। अभी डॉक्टर लोग राउण्ड पर आ रहे हैं, बात उनके कान में डाल देना। वे जो भी दवा लिखें जैसे लेने को कहें, मंगवालेना, समयानुसार लेते रहना। तुम बस खाने-पीने का ध्यान रखो, बाकी तुम्हारा ध्यान हम रखेंगे। कमजोरी रहेगी तो बुखार भी तुम्हारा ध्यान रखेगा। तुम ऐसी कोशिश करो कि बुखार अव्वल तो आये नहीं और अगर आये भी तो मामूली सा।" वह भी खाने-पीने को ही रोता रहता है। बुखार लाने में इसका भी कोई हाथ नहीं। इन सब बातों का ध्यान तो मुझे ही रखना चाहिए वरना अगर बुखार नहीं उतर सका ये कोई और दवा भी नहीं दे पायेंगे केवल बुखार को भगाने में ही जुटे रहेंगे।

"ठीक है सर, मैं पूरा ख्याल रखूंगा।"

अपनी कमजोरी को ध्यान में रखते हुए मुझे उसकी बात माननी ही पड़ती है और फिर उसकी

बात मानने के अतिरिक्त मेरे पास कोई दूसरा रास्ता भी नहीं है।

"सफाई वगैरह भी ठीक से हुई है कि नहीं।"

तुरन्त दो नर्सें हाथ में पानी का तसला, साबुन और तौलिया लेकर मेरे पास आकर पूछती है। सफाई के बारे में वे भली प्रकार से जानती है कि उषाकाल से ही मेरे सम्बन्धी यह कार्य सर्वाेच्च प्राथमिकता से करते है। आठ बजे तक कोई सफाई का समय नहीं होता फिर भी वे अपनी तरफ से पूरी होशियारी करती है।

"हो चुकी सिस्टर।"

मेरे कहने के बावजूद वे इधर-उधर हो चुकी मेरी सफाई का मुआयना करती हैं। उनके द्वारा की जाने वाली सफाई के सम्बन्ध में बाकी रोगियों के सम्बन्धियों ने पहले से ही हमें आगाह करते हुए कहा था कि मेरी सफाई का काम सम्बन्धियों के हाथों से ही सम्पादित किया जायें तो ठीक रहेगा क्योंकि यहां के स्टॉफ का काम केवल औपचारिकताएं निभाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उसके बाद से ही मैं उन सबको अपनी-अपनी औपचारिकताओं को निभाते हुए देख रहा हूं। वार्ड में

अब पूरी शान्ति है। केवल वार्ड इंचार्ज की डांट कभी-कभी शान्ति भंग कर जाती है। डॉक्टर लोग अब राउण्ड पर हैं। रोगियों का हाल-चाल पूछा जा रहा है। मेरी दुर्घटना कई डॉक्टरों के लिये अभी तक रहस्य बनी हुई है। सबके-सब इसे जानने के इच्छुक हैं। मैं इसे कितनी ही बार दोहरा-दोहराकर तंग आ चुका हूं। शायद आज फिर कोई नया डॉक्टर आया है और पूछ रहा है।

"क्या हुआ था मिस्टर तुम्हारे संग ?" बेड के तकिये की तरफ चार्ट में पूरी-की-पूरी हिस्ट्री शीट लिखकर रखी हुई है फिर भी अपनी कहानी मुझे ही बार-बार दोहरानी पड़ती है, बार-बार सुनाने को कहा जाता है। रोज कितनी ही बार दोहराता था, अब भी दोहराता हूं और शायद भविष्य में भी बारम्बार दोहराता ही रहूंगा कभी डॉक्टरों के सामने, कभी अपने सम्बन्धियों के सामने तो कभी बाहर के लोगों के सामने।

"रोड़ एक्सीडैण्ट सर।"

"किससे हुआ था ? मेरी हालत देखकर वह सवाल करता है।"

"तेल टैंकर से सर।"

"आप रोड़ पर थे ?"

"नहीं सर बस में सफर कर रहा था।"

"तो बस का टैंकर से हुआ था।"

"यस सर। सामने से आ रहा एक टैंकर ऊंटगाड़ी को ओवरटेक कर रहा था।"

"आपको कैसे लगी।"

"मैं सीट पर सो रहा था। शाम का समय था। लाल बस थी। लेट हो गई थी। स्पीड तेज थी। सिंगल रोड़ थी। ड्राइवर भी थका हुआ था, फुर्ती से वह बस को संभाल नहीं पाया। परिणाम स्वरूप यह सब हो गया। आगे की कई सीटें उखड़ कर मेरी सीट पर गिर गई थी। मैं भी नीचे गिर गया, सीटों के नीचे दब चुका था। पता नहीं वास्तव में कहां लगी। शायद रीढ़ की हड्डी पर धक्का लगा होगा।"

"मौत भी हुई थी किसी मुसाफिर की ?"

" बस में केबिन में बैठे हुए लोग एट द् स्पोट ही एक्सपायरी कर गये थे।"

"ओह ! तुम्हारी किस्मत काफी अच्छी रही होगी तभी तो बच गये। तुम जल्दी ही ठीक भी हो जाओगे। बस थोड़े दिन की बात और है। तुम्हें जल्दी ही घर भेज दिया जायेगा। किसी बात की चिन्ता

मत करना।'' डॉक्टर पहले ठण्डी सांस भरता है फिर काम की बात पर आता है।

''थैंक यू सर। फिर भी मुझे कितने दिन तक यहां पर रहना होगा ?''

''कुल छः सप्ताह। बाकी हिसाब तुम खुद लगा सकते हो कि तुम्हे यहां पर कब और किस दिन लाकर एडमिट किया गया था।''

''क्या मैं फिर से चल-फिर सकूंगा सर ?''

''ओह ! श्योर। हां-हां क्यों नहीं । तुम कुछ ही दिनों में अपने सारे काम खुद ही सम्पादित कर सकोंगे। तुम्हारे हाथ-पैरों की संवेदनशीलता बहुत जल्दी ही वापस आ जायेगी।''

''सर। मुझे बुखार बहुत आता है।''

''कोई खास बात नहीं है। दवा लिख देते है। ये मंगवा लेना। लेते रहना। ठीक हो जायेगा लेकिन चिन्ता मत करना। ये सब तो चलता ही है।''

''कोई परहेज सर।''

''कुछ नहीं। केवल बातचीत कम करना। आराम ज्यादा। तुम्हारा ज्यादा बातचीत करना बुखार आने का बड़ा कारण है। चुप रहोगे तो बुखार से बचे रहोगे।''

"ठीक है सर।"

बातचीत के दौरान मेरी आंखे इतनी अधिक नम रही थीं कि अगर कुछ देर और बातचीत होती रहती तो शायद मैं रो पड़ता, आंखे डबडबा आतीं। उन्होंने दवा लिख दी और चले गये। डॉक्टरों के चले जाने के बाद मैं कुछ सोने का प्रयास करता हूं। बिल्कुल पास में केवल एक ही सम्बन्धी खड़ा है। बाकी सब बाहर गये हुए है। उन्हें जाना पड़ा। यहां का नियम जो है। नियमों को मानना हमारी विवशता है। उसे मैं सिर में खुजली करने, माथे पर लगा हुआ पाउडर साफ करने, आंखो में से छलक चुके आंसू साफ करने, होंठो पर गीला कपड़ा मारने, पूरे मुंह पर हाथ फेरने और कुछ पानी पिलाने को कहता हूं। बार-बार पानी पिलाते-पिलाते यही सब कुछ करते-करते शायद वह बोर हो चुका है। कहता कुछ नहीं केवल उसकी गतिविधियों से ही मालूम हो जाता है क्योंकि जब वह मूड में नहीं होता या थक जाता है, खीझ जाता है तो मेरे मुंह में पानी का गिलास तेजी से और जबरदस्त तरीके से उलटने लगता है, जिससे पानी मेरे सांस के साथ मिलकर फेफड़ों में चला जाता है, खांसी आ जाती है, आंसूओं में पानी आंखों

में आ जाता है। फेफड़े बोलने लगते है फिर उसे फेफड़ों पर हाथ फिराने को कहना पड़ता है। देर तक खांसना पड़ता है। अगर कभी वह मूड में होता है तो प्यार से पेश आता है। समय पर काम न होने की वजह से कभी-कभी मैं भी खीजता हूं, बेवजह गुस्सा करता हूं क्योंकि जब मेरे सब्र का घड़ा भर जाता है, पानी सिर पर से गुजरने लगता है तो धीरज का बांध गुस्से की बाढ़ का सामना नहीं कर पाता, उसके सामने टिक नहीं पाता। गुस्सा करना मेरी आदत नहीं है केवल विवशता है जो कि यहां की बोरियत से पैदा होती है। एक ही काम कई दिनों से करते-करते शायद वह भी तंग आ चुका है। उस पर वार्ड इन्चार्ज का अभद्र, अशोभनीय, असहयोगात्मक व्यवहार आदि। बिना कुछ बोलते हुए वह सब कुछ करता है। मैं सब कुछ जानता हूं, इतनी उम्र ऐसे ही नहीं ली। क्या हुआ अगर मैं इस बिस्तर पर पड़ा हुआ हूं, लाचार हूं। मेरे खीजने को वह भी भलिभांति जानता है। कभी-कभी बुरा भी मान जाता है कभी नही। मैं अक्सर सोते-सोते जागता हूं और जागते-जागते सोता हूं। इस जागने और सोने का कोई पक्का समय और हिसाब-किताब नहीं है।

राऊण्ड अब समाप्त हो चुका है। बाहर गये हुए सम्बन्धियों ने अब लौटना प्रारम्भ कर दिया है। किसी के हाथ में चाय का फलास्क, किसी के हाथ में ठण्डे की बोतल, किसी के हाथ में फल तो कोई दूध ला रहा है। रोगियों से मिलने वालों का आवागमन बढ़ने लगा है। फिर से यहां पर कोलाहल-सा मचा रहा है। चारों तरफ शोर-ही-शोर है। शोर करने वालों को नर्सें बार-बार बाहर चले जाने का आदेश सुनाती है। कुछ देर के लिये शोर कम होता है। नर्सों के जाते ही कोलाहल फिर से बढ़ने सकता है। लोग-बाग शायद बाहर भेज दिये जाने के डर से चुप हो जाते है। एक बार चुप होकर फिर बोलने लगते है। मेरे पास भी कुछ-कुछ बातचीत चल रही है। मेरी आंखे बंद हैं लेकिन दिमाग खुला। दिमाग बचा हुआ है तो इतनी चिन्ता करता रहता हूं वरना मैं भी पागलों की तरह बेफिक्र होकर यहां पड़ा रहता। हो सकता है यही चिन्ता कभी मेरी भी चिता बना डाले। दिमाग हमेशा जागता रहता है। पूरे वार्ड की बातों, क्रियाकलापों का जायजा लेता रहता है। कान खुले रहते हैं। दिन भर का समय यूं ही कानों के सहारे व्यतीत करता हूं। कान ही समय काटने का

बढ़िया साधन हैं, अपनी कुछ भी कहने के बजाय लोगों की सुनते रहो बस। लोगों की सुनते-सुनते अपनी कहने का समय ही नहीं बचेगा और फिर याद भी नहीं रहेगा हमें भी किसी को कुछ सुनाना है, कहना है।

पास में बैठे सम्बन्धियों के वार्तालाप में अचानक परिवर्तन होने लगता है। रामराज की बात की जा रही है। एक-दूसरे से एक-दूसरे का हाल पूछा जा रहा है। शायद कोई अन्य रिश्तेदार आया है। मेरी आंखे बंद देखकर शायद उन्होनें मुझे नींद में समझ लिया है। ये सबके सब मेरी ही बातों में व्यस्त होने लगते हैं, किसी को उनकी चाय-पानी की सेवा का प्रबन्ध करने को भेजा जा रहा है। उनका वार्तालाप प्रारम्भ हो चुका है। मेरे कान और तेज हो चुके हैं, दिमाग पूर्णतया जाग चुका है। इतना चौकस कि सुई गिरने तक की आवाज को समझ सके।

"अभी तो सो रहा है शायद।"

"और अब दिन भर बिस्तर पर पड़े-पड़े कर भी क्या सकता है बेचारा। अब तो यह बिस्तर पर लेटे रहने के काबिल ही रह गया है।" कोई ठण्डी

सांस भरते हुए कह रहा है। कोई उसी प्रकार सुन भी रहा है।

"ये सब कैसे हुआ ? कहां पर हुआ ?"

बस। सब इसी तकदीर का खेल है। न कुछ लेना न कुछ देना। मुफत में ही चक्कर में आ गया। फालतू में लग गई इसे।"

"कभी-कभी तकदीर भी कैसे-कैसे खेल खिला जाती है। इन्सान के साथ किस तरह खेलती है और फिर पता भी नहीं चलने देती।"

"पता नहीं चलने देती तभी तो हम इसे मानते है। वो तो इसकी तकदीर अच्छी थी, बच गया वरना इसके साथ के काफी मुसाफिर मारे गये। इसके साथ एक आदमी और था। कम पहचान वाला था फिर भी उसने हम सब पर बहुत बड़ा अहसान किया है। वह भी उसी बस बस में था, आगे की सीटों में केबिन के पास बैठा था। बस में भीड़ ज्यादा होने के कारण पहले इन दोनों की मुलाकात नहीं हो पायी थी। ये दोनों अलग-अलग, आगे-पीछे बैठे थे। वह आगे-आगे था और यह पीछे-पीछे। एक्सीडैण्ट होने के स्थान से एक-दो स्टॉप पहले ही इन दोनों ने एक-दूसरे को देख लिया। हाल-चाल पूछा, चाय-पानी पिया। बस में

तब तक काफी जगह हो चुकी थी। यात्री नाम मात्र के ही थे। वह इसे भी अपने पास बुला रहा था, परन्तु इसने उसकी न मानकर उसे ही अपने पास बुला लिया। जल्दी के चक्कर में एक्सीडेण्ट हो गया। तकदीर अच्छी थी दोनों की वरना जिस सीट पर वो आदमी पहले बैठा था वहां पर तब कुछ भी नहीं बचा। बहुत नुकसान हुआ। कई मुसाफिर मारे गये, कई जख्मी हो गये। अब ये दोनों ही एक-दूसरे की जान बचाने का धन्यावाद देते हैं। वह आदमी जब अपनी पुरानी सीट के बारे में सोचता है तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते है यह सोचकर कि अगर यह उसे अपने पास न बुलाता तो वह भी अन्य मर चुके मुसाफिरों के साथ ही निश्चित रूप से मारा गया होता। अब तक उसकी रस्म-क्रिया तक सम्पन्न हो चुकी होती। पत्नी विधवा हो गयी होती, माता-पिता बेसहारा हो गये होते और बच्चे अनाथ हो गये होते। वह इसी की सीट के किनारे पर गैलरी के पास ही बैठा था। थोड़ी-सी चोट देकर उसका बुरा वक्त चला गया था। पहले तो उस इसके बारे में पता ही नहीं चला क्योंकि अचानक हुए एक्सीडेण्ट से मची भगदड़ में सब यात्री एक-दूसरे को रौंदते हुए नीचे उतर गये

और जिसे भी, जो भी साधन मिला, रूकवाया, बातचीत की और सवार होकर चले गये। केवल एक वही बाहर रह गया। वह इसके बारे में सोच-सोच कर परेशान हो रहा था कि यह उसे बिना बताये ही पता नहीं कहां चला गया। इसी उधेड़बुन में वह पुनः बस में चढ़ने की सोच ही रहा था कि चढ़ते-चढ़ते एक बार रूक गया। खुदा का शुक्र समझो कि वह अपना सामान देखने की गरज से बस में फिर से चढ़ा और सामने इसकी पगड़ी पड़ी हुई देखकर इधर-उधर देखा, उसे कोई भी नजर नहीं आया। टूटी हुई, उखड़ी हुई सीटों का ढेर लगा था।''

''कोई और नहीं था इसकी पहचान का ?''

''शायद नहीं। अगर होता भी तो आजकल का समय इतना अधिक बुरा है कि कोई भी, किसी की भी सहायता करने की इच्छा होते हुए भी हिम्मत नहीं करता क्योंकि हमारे देश में कानून ऐसे-ऐसे बनाये गये हैं कि उनके चक्कर में कोई भी मददगार फालतू में फंसना नहीं चाहता। फंस भी जाये जो जिंदगी भर अदालतों के चक्कर में से छूट नहीं सकता। अगर वो नहीं होता तो पता नहीं क्या होता इसके साथ। सब लोग चले जाते यूं ही सीटों के नीचे

दबा हुआ छोड़कर। शायद इसके वहां पर दबे होने का किसी को मालूम भी न पड़ता। हड़बड़ी में इसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं गया था।''

''इसके वहां पर दबे होने के बारे में उसे कैसे पता चला ?''

''इसकी पगड़ी देखकर उसने इधर-उधर देखा। उसे कोई भी दिखाई नहीं दिया उसने इसके बारे में पहले तो सोचा कि हो सकता है कि वह भी शायद दूसरे मुसाफिरों के साथ बैठकर चला न गया हो लेकिन दूसरे ही क्षण जब वह अपना सामान उठाकर बस से नीचे उतरने को ही था कि इसने उसे पुकारा। उसने आश्चर्यचकित होकर इधर-उधर चारों तरफ देखा। उसे कुछ भी नहीं दिखाई दिया। उसके दुबारा पागलों की तरह इधर-उधर देखने पर इसने कहा कि मैं यहां हूं सीटों के ढ़ेर के नीचे। देखते ही उसने जैसे-तैसे सीटों को हटाना प्रारम्भ किया, सीटें उठाकर इधर-उधर करने के बाद ज्यों ही इसे बाहर निकालने के लिये हाथ बढ़ाया तो यह धीमे से बोल पाया कि दोस्त अब मुझे चार आदमियों की जरूरत है, तुम अकेले मुझे बाहर नहीं निकाल सकोगे क्योंकि मैं अपने शरीर का नियन्त्रण खो चुका हूं।

"फिर उसने क्या किया ? किसे पुकारा ? किसकी मदद ली ?

"इसकी बात सुनते ही उसके पेट में जबरदस्त मरोड़ उठा। इसकी मिट्टी के ढ़ेर जैसी बिखरी हुई हालत देखकर। यह रेत की तरह उसके हाथों में से फिसल गया था। उसने इसे उठाने की कोशिश भी की थी लेकिन कामयाब नहीं हो पाया। वह अचानक घबरा गया। इतना घबरा गया कि असमंजस में देर तक सोचता रहा कि वह क्या करे ? कैसे इसे नीचे उतरवाये ? किसकी मदद ले ? किसे पुकारे ? कैसे इसकी प्राथमिक चिकित्सा करवाये ? सबसे पहले उसने निबटना ही ठीक समझा। वहां पर केवल भरे हुए मुसाफिरों, एक-दो पुलिस वालों के अलावा कोई और नहीं था जिससे वह मदद मांग सकता।"

"फिर इसे यहां कौन लाया ? किसने इसकी मदद की ?"

"सोचते-सोचते उसका कुछ समय और बीत गया। उसे ज्यादा चोट नहीं लगी थी। यह बिल्कुल होशोहवास में था। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद एक बस और आ गई थी। अवसर देखकर वह रूक गई। कुछ मुसाफिर घटना का जायजा लेने नीचे उतरे

तो उसने उनसे प्रार्थना करके इसे नीचे उतरवा लिया। उसने दूसरे मुसाफिरों से पहले ही कह दिया था कि यह अपने शरीर का नियन्त्रण खो चुका है था इसलिये मेहरबानी करके इसे पकड़ कर खींचने की बजाय चारों हाथों-पावों से उठाकर आराम से बाहर निकालें।''

''इसके चोट कहां पर लगी थी ?''

''वैसे तो इसके सिर में थोड़ी-सी खरोंचे आयी थीं। वो अब पूरी तरह ठीक हो चुकी हैं लेकिन असली चोट तो रीढ़ की हड्डी में है। हड्डी की कोई डिस्क अपने स्थान से इधर-उधर सरक गई है। इसलिये यह बिल्कुल अपंगों जैसा हो चुका है। उस आदमी ने इसे पास के किसी क्लिनिक में डॉक्टर को दिखाया। उसके कथनानुसार पुलिस के माध्यम से इसके कार्यालय में सूचना दी गयी। घर पर खबर की गयी। बीवी-बच्चों को बताया। आसपास के पड़ौसी तुरन्त मदद के लिये तैयार हो गये। वहां के डॉक्टर ने जब यह जानना चाहा कि यह किस हॉस्पीटल में रेफर होना चाहता है क्योंकि वहां पर उसके पास इसके उपचार का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं था तो इसने यहीं पर इसी हॉस्पिटल में एडमिट होने को ही प्राथमिकता दी क्योंकि यहां पर इसका पहले से ही अक्सर आना-

जाना लगा ही रहता था। पूर्व में भी किसी-न-किसी के साथ यहां आकर रहता ही रहा था। जब तक घर पर पता चल पाता, वहां से कोई भी आ पाता, उस आदमी ने इसे यहां लाकर एडमिट करवा दिया था। जहां-जहां पर भी आवश्यकता हुई उसने सारी-की-सारी औपचारिकताओं को पूरी किया और इसे हर प्रकार से बेफिक्र रहने का हौंसला दिया। वह फरिश्ता हर दूसरे-चौथे दिन यहां आकर अपनी जान बचाने का धन्यावाद देता है, इसकी हर चीज का ख्याल रखता है। उस रोज अगर वो न होता तो जाने क्या बीतती इस पर। क्या होता इसके घर वालों का। इसके घर से किसी के आने के बाद ही वह यहां से गया था। किसी आया की तरह इसकी देखभाल की थी।''

''इसका मतलब है वह आदमी वास्तव में इसके अति निकट रहा होगा।''

''इसके बारे में पक्के तौर पर कुछ नहीं कह सकते कि वह उसके अत्यन्त निकट रहा होगा या नहीं फिर भी सफर में अगर कोई मामूली-सा-पहचान का चेहरा नजर भी जाये तो वह सफर खत्म होते-होते बहुत पास आ जाता है। इतना अधिक पास कि

जिंदगी भर पास आ जाता है। इतना अधिक पास कि जिंदगी भर पास ही रहता है। कभी भी दूर नहीं होना चाहता। जो कि किसी आये और पक्के दोस्त की तरह पराये शहर और सफर में काम आता रहता है। वह आदमी अगर इसके ज्यादा पास था तो उसने किसी गहरे रिश्तेदार की तरह काम किया और अगर वह कुछ दूर से भी होता तो उस भाई ने इन्सानियत दिखलाई। हम सब हमेशा दुआ करते हैं कि खुदा उसकी मदद करें, उम्र लम्बी करें जिसने हमारी मदद की। इसे यहां पंहुचाया।''

''अब इसका क्या हाल है ? हाथ पैर चलते हैं कि नहीं ? मल-मूत्र का पता भी चलता है कि नहीं ? भूख-प्यास लगती है कि नहीं ? दवा-दारू काम करती है कि नहीं ?''

''बाहर से तो इसकी चोट के बारें में कुछ भी पता नहीं चलता। रीढ़ की हड्डी के बारे में या तो भगवान ही जानता हैं या फिर यहां के डॉक्टर लोग जो हर पांचवे-सातवें दिन एक्स-रे करके ले जाते हैं लेकिन बताते कुछ भी नहीं। कुछ भी, कभी भी पूछो तो हर बार एक ही रटा-रटाया जवाब देते हैं कि हम ज्यादा चिन्ता न करें। भगवान पर भरोसा रखें। सेवा

करें, जितनी भी हो सके ज्यादा खुराक दें। सब भगवान के हाथ में है। वही सब कुछ ठीक करेगा। यहीं पर आकर उनकी बात पहेलियों जैसी लगने लगती हैं जब ये लोग सच्ची बात न बताकर दुआ करने और भगवान पर भरोसा करने की बात करते हैं। पेट से नीचे की संवेदनशीलता खत्म हो चुकी है। मूत्र के लिये नलकी लगा रखी है। यूरो बैग जब भी भर जाता है तो खाली कर देते है। पासा पलटते समय मल साफ कर देते हैं इसे कुछ भी पता नहीं चलता। भूख-प्यास भी ठीक ही लगती है। बिस्तर पर पड़े-पड़े रोगी हजम भी कितना कर सकता है। फिर भी जितनी इच्छा होती है खा-पी लेता है। हम अगर जबरदस्ती खिलाने-पिलाने की कोशिश करते हैं तो हमसे नाराज हो जाता है। कई-कई बार तो बिल्कुल ही न खाने की जिद भी कर लेता है। हमें ही हारना पड़ता है। उधर डॉक्टर लोग हमें इसे ज्यादा-से-ज्यादा खिलाने की सलाह देकर चले जाते है इधर ये जिद कर लेता है। कई बार हम बीच में पिस जाते हैं हालांकि यह भी भली-भांति जानता है कि अच्छी खुराक से इसे ही फायदा होना है लेकिन

करे क्या ? बिस्तर पर जो पड़ा है। जल्दी-जल्दी हजम कैसे हो सकता है ?"

उनके बातें करतें-करतें चाय-पानी भी आ जाता है। सब लोग बीच-बीच में बातें भी कर रहे हैं, चाय भी पी रे हैं। जैसे-जैसे उन सबका वार्तालाप चल रहा होता है मेरी आंखों में से किसी उफनती हुई नदी की बाढ़ की तरह प्रवाहित होकर गालों पर से गुजरते हुए, कानों में तेल की तरह गर्म-गर्म महसूस हो रहे है। ये आंसू भी बड़े बेलगाम होते है, वक्त-बेवक्त बहने लगते हैं। अब केवल आंसू बहाना ही मेरा काम रह गया है। अपनी तकदीर पर रोना ही मेरी मजबूरी है। कभी भूतकाल को देखकर, कभी वर्तमान को देखकर और कभी भविष्यकाल के बारे में सोच-सोच कर। अब जैसे ही मैं आंखे खोलकर देखने की कोशिश करता हूं तो सामने फादर इन ला को अपने दो-तीन साथियों के साथ बैठे हुए पाता हूं जो मेरी हालत का जायजा ले रहे है। उन्हें रूंधे हुए गले से मैं केवल प्रणाम करने के अलावा किसी अन्य प्रकार की गतिविधि सम्पादित करने की स्थिति में नहीं हूं। वे लोग भी मेरी हालत से भलीभांति परिचित है। पास में खड़े हुए रिश्तेदार के माध्यम से मैं उन्हे अपने

पास आने की प्रार्थना करता हूं। वे पास आते हैं। माथे पर हाथ फिराकर आशीर्वाद देते हुए कहते हैं-

"बेटा। तू किसी भी बात को लेकर चिन्ता मत करना। हम लोग तेरी जान की खातिर भगवान से भी टक्कर लेने से पीछे नहीं हटेंगें। तू आराम से इलाज करवा। बेफिकर हो जा। पैसे-टके की बिल्कुल भी चिन्ता मत करना।"

"ठीक है जी।" मैं उन्हें कैसे बतलाऊं कि मेरे चिन्ता करने या न करने से भला क्या होता है। जो होना है वो तो होकर ही रहेगा। जो नहीं होना है वो कभी नहीं होगा। हम-तुम चाहे कितना भी भाग-दौड़ क्यों न कर लें। होनी को कोई भी टाल नहीं सकता। होनी तो होकर ही रहती है। हम क्यों बेकार में चिन्ता कर फालतू में तनावग्रस्त रहें। जिन लोगों ने जिंदगी में कभी भी हॉस्पिटल का मुंह भी नहीं देखा मेरा पता करने के लिये उन्हें भी यहां तक आना पड़ा है जैसे कि कभी मैं भी आया करता था। मैं यह बिल्कुल भी नहीं जानता था कि किसी समय मुझे भी यहां आकर एडमिट होना पड़ेगा। लोगबाग, दोस्त, सगे-सम्बन्धी मेरी सेहत का पता लेने के लिये यहां तक आयेंगे।

''घर पर सब कैसे हैं ? काम-धन्ध कैसा है ? बच्चे कैसे हैं ? मैं पूछता हूं।''

''घर में सब लोग राजी-खुशी से हैं बेटा। सबको तुम्हारा ही हाल जानने की उत्सुकता है। तुम्हारा ही इन्तजार है। तुम जल्दी से ठीक हो जाओ।'' थोड़े दिन पहले सिर के जो बाल काट दिये गये थे वही अब कांटो की तरह चुभने लगे है। बुजुर्ग उन्हीं में हाथ फेरने लगते है। वे अपनी पुत्री को विधवा होता हुआ नहीं देखना चाहते इसलिये बार-बार मुझे सांत्वना दे रहे हैं। कई बार उनकी बातों से मैने अनुमान लगा लिया है कि मेरा ठीक होकर चल-फिर सकना मुश्किल है यह सब सिर्फ एक कल्पना बनकर ही रह जायेगा। जिस तरह की हालत में से अब मैं गुजर रहा हूं वह अब सजा लगने लगी है। जीवन की गाड़ी का इंजिन खराब हो चुका है। स्पीडोमीटर बन्द हो चुका है। गियरों से जुड़ी हुई पहियों तक जाने वाली शाफट बेकार हो चुकी है। गाड़ी का चल पाना संभव नहीं लगता। अगर संभव होता तो भी पता नहीं किस दिशा में जाती, भंवर या तूफान में फंसी हुई किश्ती की तरह। मेरा फिर से चलना-फिरना चांद पर जाने जैसा लगता है।

दूर से आये हुए बाकी लोग फादर इन ला के साथ अब जाने को तैयार हैं अपनी इस कहानी को मैंने अपने साथियों के साथ इतनी अधिक बार दोहराया हैं कि मुझे अब स्वयं किसी को भी बताने की जरूरत ही नहीं होती। मेरे साथियों ने इसे टेप रिकार्डर की तरह याद कर रखा है। किसी के भी पता लेने आने पर ये लोग ही बता देते हैं कि मेरे साथ कब-कब, कहां-कहां और क्या-क्या हुआ, कैसी दुर्घटना घटित हुई। आगन्तुकों के मिलने आने का समय अब समाप्त होने जा रहा है। वार्ड इन्चार्ज ग्वाले तरह लोगों को बाहर जाने के लिये हांक रहा है। लोग जाते-जाते भी ढ़ेरों बातें करना चाहते हैं लेकिन वह अब और इजाजत नहीं देना चाहता। यहां के कानून का वास्ता देता है। यूं ही करते-करते कहानी सुनाते-सुनाते दिन गुजर रहे हैं। एक दिन तो वो भी आयेगा जब मैं भी उन सबकी शर्तों से दूर अपने परिवार में मिल जाऊंगा।

अब मैं मृत्यु शैया पर हूं। बिस्तर पर पड़े-पड़े अक्सर मैं यही सोचा करता हूं कि तकदीर उन लोगों की अच्छी थी जो उस दिन एक ही झटके में दुर्घटना

स्थल पर ही एक ही बार में जीवण-मरण के चक्रव्यूह में से निकलकर आजाद हो गये थे, बन्धन से मुक्त हो गये। या मेरी जो कि आज तक दुख भोगने के लिये बिस्तर पर पड़ा रहा। अपनों पर बोझ बना रहा। मेरी तकदीर लोगों के लिये चाहे कितनी भी अच्छी रही हो लेकिन उन लोगों से अच्छी नहीं है। मेरी खातिर तो सबसे बेकार है। मेरी तकदीर भी अगर अच्छी होती तो शायद मैं भी उस दिन मरे हुए मुसाफिरों की तरह ही उन्हीं में से एक होता। मैं भी उनके साथ ही मुक्त क्यों नहीं हुआ। मरना तो मुझे अब भी है लेकिन तकदीर का लिखा हुआ दुख भोगकर। तकदीर को भला-बुरा कह-सुनकर। मरना तो सभी को ही है किसी को आराम से, किसी को तड़प-तड़प कर, किसी को मेरी तरह बिस्तर पर। आठमाह से बिस्तर पर हूं। जैसे बेड नम्बर दो पर था वैसे ही अब हूं। घर पर बीवी-बच्चों पर बोझ। दिन-ब-दिन गिर रही सेहत को देखकर अब तो तमाम डॉक्टरों ने भी मेरे ठीक होने, ज्यादा जी पाने की उम्मीद छोड़ दी है। पहले उन्हें केवल शंका ही थी लेकिन अब पूरा यकीन ही हो चुका है। वे अब यह पक्का अनुमान लगे हैं कि मेरा जीवन अब कितने

घण्टों का मेहमान है। यहां पर भी भरपूर खुराक का ही रोना है। जितने दिन ठीक से खाया-पीया उतने दिन ठीक से जिया। जब से खाना छोड़ा, तब से जीना''। मेरा कमरा, मेरा बदन दोनों बदबू से भर चुके हैं जिसे हर सदस्य चाहकर भी अनदेखा कर रहा है। रिश्तेदारों ने भगवान से भी टक्कर लेने की कसर बाकी नहीं छोड़ी है। वे कभी भी पीछे नहीं हटे है। जिसने भी, जैसा भी करने को कहा उन्होंने सब कुछ किया परन्तु अब उन सबकी मेहनत भी मिट्टी में मिलती हुई नजर आ रही है। पानी की तरह बहाया हुआ पैसा पानी में ही जा रहा है। भगवान ने इन सबमें से किसी की भी प्रार्थना नहीं सुनी। आशा की अंतिम किरण तक बुझ चुकी है। मैं ही इन्हें और ज्यादा भागदौड़ करते हुए नहीं देखना चाहता और सोचने लगा हूं जितनी भी जल्दी हो सके उन्हें इस भागदौड़, बदन की दुर्गन्ध से, झूठी आस से मुक्ति दिला ही दूं ताकि सबको और ज्यादा परेशान न होना पड़े। जिन लोगों ने भी मेरा पता लिया, मदद की, सेवा की, प्रार्थना की, उन सबकी लम्बी आयु की मैं प्रार्थना करता हूं।

मेरे जीवित रहने की उम्मीद न होने पर जिस-जिस व्यक्ति को भी मालूम हुआ हाल जानने चला आया। नब्ज गुम हो चुकी है। आक्सीजन लगा रखी है। सांसो ने गति कम कर दी है। जीवन का सफर अंतिम पड़ाव पर है। दिल की धड़कन बन्द हो रही है खत्म होती हुई बैटरी और चाबी की तरह। सांस इस कदर मंद है कि है कि दूसरी सांस आने की उम्मीद नहीं है। मेरे मरने के बाद पता नहीं मेरे बीवी-बच्चों को कैसे-कैसे दिन देखने पड़ेंगे। किन-किन दुखों का सामना करना पड़ेगा ? किन-किन प्रकार के अच्छे-बुरे लोगों से मिलना पड़ेगा ? अपने चारों ही तरफ तूफान-ही-तूफान महसूस कर रहा हूं। जीवन की नाव मझधार में डूब रही है टूटी हुई पतवार की तरह, बिना किसी नाविक के। बचने का कोई आसार नजर नहीं आ रहा है।

जैसे-जैसे सांसोंके रूकने का, बदन के चिता पर जलकर अस्थियां प्रवाहित करने का समय पास आता जा रहा है, सभी सम्बन्धियों ने पाठ प्रारम्भ कर दिया है, गंगाजल की व्यवस्था की जा रही है ताकि मुझ मरते हुए के मुंह में टपका कर मुक्ति दिलाई जा सके। उन सबके विश्वासनुसार मेरे सारे

पाप कट सकेंगें। मैं स्वर्ग में प्रवेश कर सकूं। हर किसी के द्वारा पुकार-पुकार कर मेरे मुंह में गंगाजल डाला जा रहा है। सांसो की धीमी-धीमी रफतार में सभी बेसब्री से अपनी-अपनी बारी का इन्तजार कर रहे हैं ताकि अंतिम सांस के साथ गंगाजल की अंतिम बूंद भी मैं उसके हाथ से ही ग्रहण करूं जैसे कि घड़ी की सूइयां चक्कर लगाकर एक ही बिन्दु पर आकर, ठहर कर समय का आभास करवाती है। घड़ी के बन्द हो जाने पर समय नहीं ठहरता। खराब घड़ी की जगह नई और अच्छी घड़ी आ सकती है लेकिन मेरी कमी कभी भी पूरी नहीं हो पायेगी। केवल समबन्ध ही बाकी रह जायेगा। मैं किसी का पुत्र हं, किसी का भाई हूं, किसी का दोस्त हूं, किसी का पिता हूं, किसी का पति। किसी-न-किसी का कुछ-न-कुछ हूं। केवल नाम और सम्बन्ध ही रहेगा। इन सबकी कोशिशों के नाकाम हो जाने के पश्चात मैं जीवित नहीं बचूगां। देह त्याग दूंगा। अंतिम बार नहलाया जाऊंगा। चार आदमियोंके द्वारा अर्थी के रूप में उठाकर श्मशान भूमि तक ले जाया जाऊंगा। पुत्र द्वारा मुखाग्नि देकर देर तक जलकर राख में परिवर्तित होकर अस्थियों के रूप में किसी भी तीर्थ स्थान में पवित्र

जल में प्रवाहित किया जाऊंगा। स्वर्गवासी कहलवाऊंगा। केवल एक याद बनकर रह जाऊंगा। माला पड़ी हुई एक बेजान तस्वीर के रूप में।

गंगाजल का टपकाया जाना तेज किया जा रहा है। वार्ड नम्बर चार की बन्द पड़ी हुई घड़ी मुझे बार-बार दिखाई दे रही है जो दुख की कठोर घड़ी बनकर पूरे परिवार के हाथ में बंधी हुई है। मुझे अपनी तरफ खींच कर बन्द कर देना चाहती है और जो अब धीरे-धीर मौत की तरफ बढ़ रही है।

4.रिश्ते खो गये

नयी दिल्ली

बुधवार

बेटा श्रवण !

तेरा नाम श्रवण रखने से पहले मैं चाहता था, सोचा करता था कि बड़ा होकर तू भी 'श्रवण पुत्तर' बनेगा और अपने नाम के साथ-साथ मेरा नाम भी रोशन करेगा जिस प्रकार कि हर व्यक्ति अपनी सन्तान से आशा करता है, उसके अच्छे भविष्य को बनाने की कोशिश करता है। भविष्य जैसा भी बने वो सब तो किस्मत की बात है लेकिन अपनी तरफ से तो हर आदमी अच्छी-से-अच्छी कोशिश करता ही है। कोशिश कामयाब हो तो भविष्य बन जाता है अन्यथा सब किस्मत को दोष देकर अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं। मैं किसे दोष दूं, अपने आपको, तुझे या तेरे परिवार को, अपनी किस्मत को या भगवान को जिसे मैं रोज बार-बार याद करता हूं तेरे नाम के साथ-साथ। मगर आज 25 बरस के बाद मैं समझ पाया श्रवण बेटे कि व्यक्ति अपने अच्छे-अच्छे कर्मों की बदौलत ही ऊपर उठता है, समाज में अपना नाम बनता है, स्थान बनाता है, नाम के साथ-साथ पैसा कमाता है, हर आदमी द्वारा हमेशा याद किया जाता है। अमर हो जाता है या फिर चाहने वालों द्वारा अमर कर दिया जाता है इसके विपरीत बुरे कामों के

कारण पतन के गर्त में जा गिरता है, बदनाम होता है, लोगों के द्वारा सताया जाता है, पीटा जाता है, लोग उसे गधे पर बिठाकर, काला मुंह करके जूतों की माला पहनाकर शहरों में घुमाते हैं, पत्थर मारते हैं ताकि लोग उसके बुरे-बुरे कामों का अन्जाम देख सकें, उससे सबक ले सकें और यह भी देख सकें कि अपने द्वारा किये गये कर्मों की सजा स्वर्ग या नरक में नहीं मिलती बल्कि यहीं पर, इसी जमीन पर ही दी जाती है और शायद तू यह बात भूल चुका है। मैं अपने किस जन्म की, किस काम की सजा पा रहा हूं भगवान ही जानता है बेटे। नाम की-सी सार्थकता, लाखों-अरबों में से कोई एकाध, बिरला ही ला पाता है। अपनी प्रसिद्वि की चकाचौंध, चमकाहट के कारण तू कितना घमण्डी, स्वार्थी, खुदगर्ज हो गया है इस बात का अनुमान लगाना भी बहुत ही मुश्किल है। मैं यह अनुमान कुछ हद तक तो लगा सकता हूं लेकिन तेरे तो बिल्कुल ही बससे बाहर की बात है। अगर तेरे वश में भी हो तो मुझे क्या भला।

गर्व की चकाचौंध, प्रतिष्ठा की चमक ने तेरी आंखो पर मान-मर्यादा, स्टेटस आदि की इतनी मोटी पट्टी चढ़ा डाली कि आज तू मेरा, अपने बाप का

नाम लेना भी अपराध समझता है। अपने उस बाप को ही भुला बैठा, उस सरंक्षक को ही बिसार चुका, जिसकी छत्रछाया में खेल-कुद कर तू इतना बड़ा हुआ, दीर्घायु हुआ। जिसकी गोद में तूने अपना बचपन बिताया, जिसकी अंगूली पकड़कर तूने चलना सीखा, स्कूल जाना सीखा, पढ़ना सीखा, खेलना-कूदना सीखा। उसकी बदौलत ही तू समाज की उस मंजिल तक पंहुच पाया जिसकी प्रत्येक व्यक्ति को हर पल, हर घड़ी चाह होती है, जिसे प्राप्त करने के लिये इन्सान हर प्रकार से भ्रष्टाचार करता है। हर कानून, हर नियम को ताक में रख देता है। जो स्थान तुझे अब हासिल हुआ उसका सेहरा मेरे सिर पर बंधना चाहिए। सारा प्रतिफल, सारा क्रेडिट मुझे ही मिलना चाहिए न कि तेरी उस दुष्ट बीवी को, तेरे उन दुष्ट ससुराल वालों को जिन्होंने साजिश करके तुझे घर जंवाई बना डाला और मुझझे तुझ जैसा श्रवण पुत्र छीन लिया। उन लोगों ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा, हमारे हरे-भरे परिवार को सुखा डाला, घर को तोड़ दिया, पता नहीं उन्होनें तुझ पर क्या जादू किया कि हमारी खुशियां ही मिट्टी में मिल गई, दिलों का चैन चला गया। जब तूने ही मेरी

परवाह नहीं की तो मैं उन्हें क्या दोष दूं। उन्हें तो किसी-न-किसी का श्रवण पुत्र छीनना ही था। शायद वो तू ही था और मेरी किस्मत में भी यही लिखा था और तुझे विदेश जाना था यह तेरी किस्मत है। तू भगवान को याद कर अपने खुशी के ढंग से और मैं अपनी गमी के ढंग से तो याद करता ही हूं। याद तो हम दोनों ही करते हैं लेकिन अपने-अपने ढंग से।

तू यह भी भूल गया कि यदि मैं चाहता तो तू बिल्कुल भी पढ़ नहीं पाता, सारी उम्र के लिये अनपढ़ रह जाता, किसी मजदूर की तरह जीवन-बसर कर रहा होता या किसी कम्पनी में साधारण-सी बाबूगिरी कर रहा होता। लेकिन नहीं, मैने तेरे प्रति, अपनी सन्तान के प्रति उत्तरदायित्व को जीवन भर, सेवानिवृत्ति तक बाजुओं में खून के अंतिम गर्म कतरे तक, अंतिम सांस तक निभाने की भरसक कोशिश की। जहां तक भी सम्भव हो सका निभाया ही था, अपना पेट काट-काट कर तुझे खिलाता रहा, खुद तुझे संतुष्ट, खुश देखकर खुश होकर जीता रहा इस उम्मीद के सहारे कि बाद में, बुढ़ापे में आराम से, जी भर के खा लेंगे मगर हाय रे वक्त। तू कभी-कभी इतनी बेदर्दी से क्यों पेश आता है ? क्यों इतना

निष्ठुर हो जाता है। क्यों दगा देता है बार-बार ? कभी तू तीव्र गति से भागता हुआ नजर आता है किसी भी द्रुतगामी वाहन की तरह जिसमें खुशियों के दिन भरे होते हैं, सुखी मुसाफिर यात्रा कर रहें होते है। परन्तु कभी खराब वाहन की तरह टस-से-मस नहीं होता, अंगद की तरह पांव जमा देता है। दुख बनकर प्रेतात्मा की तरह सामने खड़ा हो जाता है, रास्ता रोक लेता है। दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसे तूने ज्यादा सुख दिया हो, सुखी रखा हो, हर आदमी तुझसे दुखी ही नजर आता है, किसी को चिन्ता में डाल देता है, किसी को चिता में। हर आदमी तेरा ही गुलाम क्यों बन जाता है ? तुझसे आज तक कोई भी जीत नहीं पाया। आदमी पर तूने हमेशा जीत ही कायम की है।

अब, आज तू एक प्रतिष्ठित अफसर बनकर अपने, सन्तान के, मां-बाप के प्रति निभाये जाने वाले उत्तरदायित्व को भूल, कृत्रिम रिवाजों कें जाल में मकड़ी की तरह उलझ गया है। आडम्बरों, औपचारिकताओं के अंधेरों में भटक गया है। तुझे इन सबके अतिरिक्त कुछ भी सोचने का वक्त ही नहीं, कुछ सूझता ही नहीं कि तेरे परिवार के बाहर

तेरा कोई अपना और भी है जो तुझे बार-बार याद करता रहता है। तुझे इतनी सुध ही कहां कि तू यह सब याद कर सके। 25 बरस पूर्व तू मेरा बेटा था, भारत देश का नागरिक था। लेकिन अब परायों, बेगानों, विदेशी नागरिकों की भीड़ में खो चुका है। अन्तर केवल इतना भर है कि मैं यहां पर भारत में हूं और तू विदेश में, पश्चिमी सभ्यता में, अंग्रेजों में, नशे में भटका हुआ भारत मां का बेटा। तू मुझे इस तरह भूलकर चला गया जैसे कि मैं कोई अनजान मुसाफिर था और तू कोई बस चालक। चालक को हर आदमी याद रख सकता है, लेकिन चालक किसी भी मुसाफिर को याद नहीं रख सकते, क्योंकि मुसाफिर बहती हुई धारा की तरह आते हैं और चालक किसी चट्टान या पुल की तरह अडिग खड़े रहते है। वह दिन मैं अंतिम सांस तक नहीं भुला सकूंगा और यह मेरा भी अटल दावा है कि तुझे भी याद ही रहेगा जब तूने मुझे बेकार बैल की संज्ञा देकर कुत्ते की तरह दुत्कार दिया था। जितना इन्सान गिर सकता है, गद्दारी कर सकता है। मैं समझता हूं कि जानवर भी इतना नहीं गिर सकता। इस दौड़ में तूने जानवर को भी पीछे छोड़ दिया। बैल अपनी जवानी, पूरी उम्र

हल जोतते-जोतते कुर्बान कर देता है, कुत्ता कभी भी अपने मालिक से गद्दारी नहीं करता। स्वामिभक्त में वह जान लुटा देता है और इन्सान पल-पल गद्दारी करता है, अपनों के ही लात मारता है। पहले दोस्ती करता है और फिर बाद में दोस्त की पीठ में खंजर घोंपता है। भगवान ने इन्सान को दिमाग देकर शायद बहुत भारी भूल की है क्योंकि यदि इन्सान के पास दिमाग न होता तो वह किसी को भी दगा नहीं देता और न ही सोचता कि क्या अच्छा है या क्या बुरा। उसके पास अगर दिमाग न होता तो शायद वह भी किसी जानवर को अपना गुलाम नहीं बनाता, काम नहीं लेता। सब बराबर होते। जानवर और इन्सान का भेदभाव कभी न पनपता। शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते। दिमाग ने ही सबको चौपट करके रख छोड़ा है। दिमाग ने ही पैसा बनाया और पैसे ने इन्सान खरीदा, तुझसे देश छुड़ाया। विदेशों में भटकने को मजबूर किया। तू भी इसी का ही खरीदा और बिका हुआ इन्सान है, इसी की गुलामी कर रहा है।

बेटा श्रवण ! ये उम्र राम-नाम की माला फेरने की होती है। आराम से बैठ कर भक्ति करने की

होती है। सारी उम्र किये हुए काम के बदले आराम की होती है। पोते-पोतियों, नाती-नातियों को आसपास, गोद में बिठाकर परियों, राजकुमारों, राजा-महाराजा, जादूगरों की चटपटी, मजेदार कहानियां सुनाने-सुनने की होती है। बालकों की तरह रूठने-मनाने की होती है। तीर्थ-यात्रा करने की होती है, घूमने-फिरने की होती है, टहलने की होती है। बेटे-बहुओं से सेवा-सुश्रुषा करवाने की उम्र में मैं इस तरह जी रहा हूं मजदूरी करते हुए। कितनी शर्म की बात है बेटे। मेरा कुछ तो ख्याल किया होता। मेरे लिये नहीं तो कम-से-कम अपनी इज्जत की ही सोचता। जब तक बाप कमा कर देता है इज्जत-सम्मान के साथ खाना मिलता रहता है। बेकार होते ही, रिटायर होते ही, भिखारी नजर आने लगता है। सबकी नजरें बदल जाती है बाप के लिये। कमजोर होते ही बैल को भी बूचड़ खाने में धकेल दिया जाता है या फिर उसे भी आवारा डंगरों के साथ घर से बाहर भेज दिया जाता है। उसका दाना-पानी घर में समाप्त हो जाता है या तेरे जैसे पुत्रों द्वारा समाप्त करवा दिया जाता हैं। कोई भी इज्जतदार व्यक्ति यह पसन्द नहीं करता कि जानवर जानकर उसके सामने बची-

खुशी सूखी रोटियां नाक-भौंह सिकोड़ कर, गालियों के साथ डाल दी जावे। नहीं न बेटे। वह भूखा मर जाना पसन्द करता है लेकिन ऐसी नफरत की रोटियों को कभी हाथ भी लगाना नहीं चाहता जो उसकी इज्जत के साथ खिलवाड़ करे, उसकी बेइज्जती करे। किसी के सामने बेशर्मी से हाथ पसारने के बजाय इज्जत से भूखा मर जाना सौ गुना अच्छा है। इज्जत से भूखे मरे हुए को देखकर लोग सलाम करते हैं। उसकी इज्जत में चार चांद लगने जैसा होता है। भिखारी और बेशर्म आदमी समान होते है, उनमें कोई अन्तर नहीं होता। कोई भी आदमी परिस्थितिवश भिखारी हो सकता है, लेकिन बेशर्म आदतन हो जाता है। अन्धे और बूढ़े की लाठी जब टूट जाती है, छीन ली जाती है या बदकिस्मती से मुड़-तुड़ कर काम की न रहकर इस कदर बेकार हो जाती है कि उसके पास कोई भी सहारा नहीं रहता, जीवन बोझ बनकर रह जाता है, वक्त बेरहम हो जाता है, हर आदमी सहारा देने से कतराने लगता है, भूख-प्यास सताने लगती है, जीने की इच्छा कायम रहती है लेकिन शरीर साथ नहीं देता तो तब वह क्या करता है ? किसके सहारे मार्ग तलाश करता

है ? किस प्रकार जीवनयापन करता है ? उसके जीवन की थकी गाड़ी में कौन उर्जा का पैट्रोल डाल देता है ? कोई सोचता है ऐसा ? नहीं । किसके पास है इतना वक्त भला इस प्रकार की घटिया औंर बेकार बातें सोचने का। जिसके तन में लगती है वो ही जानता है कि घाव क्या होता है ? जिसके पैर न फटी बिवाई वो क्या जाने पीर पराई। मेरे विचार से कोई अन्य विकल्प तलाश करता है जिसे अन्धे की लाठी, बूढ़े के रीढ़ की हड्डी का रूप दिया जा सके। अपने पेट की आग को ठंड करने का मार्ग तलाश किया, अपने दर्द की दवा, अपने वक्त को काटने का उपाय, अपने जख्मों पर मरहम लगाने का सूत्र खोज निकाला। उपाय न खोजता तो फिर क्या करता भला ? मरता क्या न करता। कुछ-न-कुछ तो करना ही था जीने के लिये वरना तो मैं कब का बुदजिलों की तरह आत्म हत्या कर चुका होता। इधर मेरी चिता जल रही होती और उधर तू किसी जश्न में पीकर मौज कर रहा होता। तेरे जाते ही मैने भी दूसरी लाठी, दूसरा सहारा तलाशने का काम किया। प्याऊ पर काम करने लगा। आते-जाते, थके-हारे मुसाफिरों को पानी पिलाकर संतुष्ट करने लगा। संतुष्ट हुई

आत्माओं की आशिष से मैं आज तक जीवित हूं। जीवित रहने के लिये कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ता है न बेटे।

इस अवस्था में आकर इन्सान दूसरे इन्सान को पहचानने से इन्कार कर देता है, किसी भी प्रकार की मदद से मुंह मोड़ लेता है। किसी के पास इतना वक्त ही नहीं होता कि सड़क के बीच में गिरे हुए किसी बूढ़े आदमी को उठने के योग्य ही बना दें, सहारा ही दे दें, उठकर चलने लायक ही बना दें लेकिन ऐसा करने को किसी का दिल नहीं मानता या फिर उनकी शान के खिलाफ होता है और फिर किसी को यह सब सोचकर लेना भी क्या होता है। बूढ़ा अस्थिपंजर, टेढ़ीकमर, पीली सूखी धंसी आंखे, हिलते-डुलते कांपते हाथ-पांव, बेकार चारपाई पर पड़ा हुआ बिना रूके लगातार खां-खां खांसकर पिटकी-सी आवाज से भिनभिनाती हुई मक्खियों के लिये बलगम थूकता हुआ लाचार, बेबस, पोपला चेहरा देखकर कौन नहीं सोचने पर मजबूर हो जाता होगा कि जो सहारा इन्सान जवानी से ही बुढ़ापे की खातिर, असाधारण कमजोरी की उम्र की खातिर तैयार करता रहता है, बनाना प्रारम्भ करता है। बाद में बुढ़ापे में वही सहारा

अगर कोई दूसरा छीन कर ले जाये, बूढ़े को बेसहारा कर दे तो सोचा है कि किसी ने कभी बेटा कि क्या गुजरती है उस बूढ़े के दिल पर, वृद्व आदमी पर जिसका सहारा छीन जाता है। केवल वही सोचता है जिसके साथ वक्त दगा करता है सहारा छीनकर। कौन देखता है ? कौन सोचता है ? शायद कोई भी नही, वक्त भी नही। इसी बेसहारा बूढ़े को देखकर, बूढ़ापे को समझकर, बढ़ती हुई खांसी को देखकर लोग अनुमान लगा लेते है कि इन्सान पर बुढ़ापा आ चुका है। उम्र ढ़लने लगी है, शरीर की ताकत जाने लगी है, आंखो की रोशनी दीपक में समाप्त हो रहे तेल से मंद पड़ी बत्ती लौ की तरह कमजोर होने लगी है, शरीर की ताकत जाने लगी है, सोचने-समझने की ताकत कमजोर पड़ने लगी है, याददाश्त धुधली पड़ने लगी है और आवाज की पहचान ही बाकी रह जाती है याददाश्त वापस लाने के लिये। शक्ल के साथ-साथ अक्ल भी बदल जाती है। लेकिन आवाज ही वह एक पहचान है जो भीड़ में से पहचानी जा सकती है और जो कभी भी नहीं बदल सकती। पुत्रों की निगरानी, बहुओं की मेहरबानी, पोते-पोतियों की परेशानी और नौकरों की शैतानी तथा नादानी ही

उसकी जिंदगानी होती है और वह बूढ़ा कैदी, बेबस, बेकार, बेसहारा, निराश्रित-सा-इन्सान एक गिलास पानी को तरस जाता है। पानी के बुलबुले की तरह क्षणभंगुर का अस्तित्ववान बार-बार मांग-मांगकर खाने-पीने वाला इन्सान दो कौड़ी का भी नहीं रहता। भिखारी हो जाता है निर्लज्ज, बेशर्म, पेटू कहलवाने लगता है। इन्सान की कीमत प्रायः तभी गिर जाती है जब वह पुत्रों पर आश्रित, पराधीन हो जाता है, पशुओं की जिदंगी जीने लगता है, बिना जमीर की। कठपुतली की तरह नाचने लगता है अपने उन सब मदारियों के हाथों जो उसे पल-पल, घड़ी-घड़ी नचाना न जानते हुए भी नचाने की कोशिश करते है। न घर का रहता है न घाट का। धोबी या कुत्ता हो जाना पड़ता है। बाड़ लगाकर नये पौधों की देखभाल माली क्या इसीलिए करता हैं कि उन्हें जानवर खा जायें, आंधी-तूफान गिरा दें, सूखा सुखा दें। पौधों के चारों तरफ बाड़ वह इसलिए लगाता है कि नन्हें पौधे बड़े होकर छायादार वृक्षों को, किसी की आशाओं को अगर तेज हवा हिलाकर जड़ कमजोर कर दे, आंधी कमजोर हुई जड़ों को गिराने की कोशिश करे या जड़ से ही उखाड़ दें। लोग काट-काटकर मिलों में ले जायें,

फर्नीचर बना लें ईंधन के रूप में जलाकर उर्जा प्राप्त कर लें, आशाओं पर कोई पानी फिरा दे तो क्या गुजरती है, पौधे लगाने वाले उस माली के दिल पर, आशा पालने वाले के दिलो-दिमाग पर ? जान सकता है कोई ? शायद कोई भी नहीं ? उसके दुख केवल माली या मेरे जैसे बाप को, लूटने वाले व्यापारी को, पिटने वाले को ही भुगतना होता है।

बाप-बेटा दोनों एक-दूसरे के बिना अपूर्ण है, अधूरे हैं, निराश्रित है एक -दूसरे पर निर्भर है, कोई भी स्वतन्त्र नहीं, पूर्ण नहीं। बचपन से यौवन तक पुत्र पिता का हाथ थामकर, बुढ़ापे में पुत्र पिता को कन्धे का सहारा देकर या बनकर चलता है। पिता के बिना पुत्र अनाथ, पुत्र के बिना पिता भी बेसहारा हो जाया करता है और पुत्र के बिना पिता का वंश भी नहीं चल पाता है। पुत्र बाप की चिता को अग्नि दे तो यह परम्परा है लेकिन इसके विपरीत पिता को पुत्र की अर्थी उठाने पड़े तो यह अन्याय है, वक्त का बेरहम कोड़ा है जो बाप की पीठ पर पड़ता है लेकिन निशान दिल पर पड़ते है, जिगर लहू बहाता है। उसकी लाचारी है। आदर्श पिता के रूप में असंख्या दशरथ इस दुनिया में मिल सकते हैं जिन्होनें पुत्रों

की खातिर हमेशा ही अपने सुखों की बलि दी हैं, जवानी की कुर्बानी ही दे दी। अगर नहीं मिल सकते तो श्रवण पुत्र। हर बाप दशरथ की तरह, बनवास जाते हुए राम की तरह पुत्र वियोग में दिन-रात तड़प-तड़पकर प्राण त्याग देता है। पूरी उम्र उसे याद करता रहता है। अंतिम सांस तक विदेश गये हुए पुत्र की राह निहारता रहता है। उसके पत्रों की प्रतीक्षा करता रहता है। पुत्र के आने की उम्मीद में, बाट जोहते-जोहते आंखे पथरा जाती हैं, फड़फड़ाते होंठ थर्रा-थर्रा कर बन्द हो जाते है, आंसू बह-बहकर सूख जाते है और तब मरे बाप की अर्थी को कन्धा देने भी नहीं आना चाहता बल्कि बाद में रस्म क्रिया में शामिल होने, औपचारिकता पूरी करने सिर्फ इसीलिए आता है कि वह बेटा जो कहलाता है। दिखावे से, लोक-लाज से वरना बूढ़े की लावारिस लाश का अंतिम संस्कार नगरपालिका को ही करना पड़ता है। उसका अस्थि विसर्जन कौन करता है यह तो भगवान ही जानताहै। बाद में वह पुत्र होने के धर्म पूरा करता है। यहां पर आकर ये बात मिथ्या सिद्व हो जाता है पुत्र के बिना मोक्ष नहीं मिलता। जब जमीन पर ही सुख नहीं मिलता, जीते जी ही नर्क जैसा जीवन

गुजारता है तो मरने के बाद मिला मोक्ष किस काम का। मरने के बाद मिले हुए मोक्ष को किसने देखा है भला। ऐसे हालत में पुत्र की कामना करना ही बेकार है जो अंतिम समयमें कंधा न दे सके।

विदेश गये हुए तुझे कितना समय हो गया ठीक-ठीक याद नहीं पड़ता और जब तो यह लगता है बेटे कि मैं जब ज्यादा दिन जीवित रहने के काबिल भी नहीं बचा हूं। सांस चलने का नाम ही नहीं ले रही और धड़कन पर भी मुझे विश्वास नहीं रहा और अब तो तू ही मेरे दिल की धड़कन है। अब तो शक होने लगा है अपनी बूढ़ी काया पर जो अब कुछ ही दिन की मेहमान है, तेरे आने तक तो शायद यह सांस रूपी मेहमान इस दुनिया से ही कूच कर चुका होगा, अलविदा कर चुका होगा और अपने स्वर्गीय सम्बन्धियों के बीच जा मिला होगा जो तेरे सामने या तेरी अनुपस्थिति में चले गये, जिनकी याद मेरे दिल में अभी भी बाकी है और बाद में जिनकी मौत पर तूने दुख प्रकट किया था। जिन्दा बाप को तो कोई भी नहीं संभालता लेकिन मरने के बाद कितनी धूमधाम से बारात की तरह शवयात्रा निकाली जाती है, शादी के जश्न की तरह मृत्यु भोज दिया जाता

है, ब्राहाम्णों में दान-दक्षिणा दी जाती है, वैभवशाली रस्मकिरिया की जाती है, पिण्डदान किया जाता है, तीर्थ-यात्राएं की जाती हैं, जीवन-भर बरसी मना-मनाकर श्राद्व किए जातें है मृतात्मा की शान्ति केलिये। जिन्दा बूढ़े को ही शान्ति नहीं मिलती तो मरने के बाद कैसे मिल सकती है। पितरों तक सामान पहुंचाने के लिये किया जाना वाला तामझाम बेकार है।

यदि पहले से ही अच्छी देखभाल की जाये तो क्या मजाल कि बूढ़ा उम्र में पहले अकाल ही, लापरवाही से मृत्यु को प्राप्त हो जाये। कहने को तो तू मेरा सहारा है परन्तु न होने के सामान। तेरी हैसियत टूटी हूई लाठी के समान है केवल नाम की बेकार लाठी। दुनिया की निगाहों में, सगे-सम्बन्धियों के लिये चाहे मैं जीवित हूं, भौतिक रूप से, दिखावे से। लेकिन नहीं मेरी आत्मा तो उसी दिन ही मर गई थी जिस दिन तू विदेश चला गया था। मेरी लाचार आत्मा उस दिन का बड़ी बेसबरी, बेताबी से प्रतीक्षा करेगी कि जब तू भी अपने पत्र को खत लिख-लिखकर जतायेगा कि तू भी उसका जन्मदाता

है, पिता है, पालक है और वह तेरा परदेसी, पराया बेटा।

अपने पोते-पोतियों को देखे बिना मैं मरना नहीं चाहता। आशा करता हूं कि तू मेरी अंतिम इच्छा ठुकरायेगा नहीं, पूरी अवश्य ही करेगा। उन्हें भी बतायेगा कि उनका दादा अभी तक जिन्दा है, भारत में है। दिन-रात उन्हें याद करता है। उन छोटे-छोटे खिलौनों से कहना, मैं उन्हें कितना प्यार करता हूं।

तेरा बदनसीब बाप

-रामलाल

पूज्य पिताजी,
चरण स्पर्श
साउथाल (लंदन)
रविवार

हम यहाँ पर कुशलतापूर्वक हैं और आपकी कुशलता के लिये हमेशा आलमाइटी गौड (सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा) से प्रार्थना करते हैं और साथ ही यह भी दुआ करते हैं कि गौड आपकी हैल्थ ठीक रखे, आपकी आई साइट जोरदार हो, आंखो की रोशनी कभी भी कम न हो और उम्र लम्बी हो। आप बराबर अच्छी और पौष्टिक खुराक लेते रहें ताकि आपकी हैल्थ कभी वीक न हो, आप कभी बीमार न पड़ें क्योंकि यदि शरीर में जान है तो जहान है, आंखों में रोशनी है तो ये दुनिया भी एक इन्द्रधनुष है, जीवन के सात रंगो की रंगीनियां नसीबों वालों को ही उपलब्ध होती है, सेहती शरीर के बलवान मुंह में, दमदार जबड़ों में पक्के दांत भी हों इस दुनिया का हर प्रकार का कड़वा-मीठा स्वाद चखा जा सकता है।

करीब एक वीक पहले आपका एक्सपलोसिव लैटर मिला। पढ़कर हाल मालूम हुआ और लगा कि

जैसे आप सहनशीलता, धैर्य की सारी-की-सारी सीमायें पार कर गये। आपने मेरी दुखती हुई किसी नस को दबा दिया। वक्त से भरे हुए मेरे जख्मों पर नमक छिड़क दिया, दबे हुए बारूद को चिंगारी दिखा दी। जख्मों को फिर से हरा करके बरसों से सोया हुआ दर्द जगा दिया। आप मेरा पत्र पढ़कर खून के आंसू भी बहाने पर मजबूर हो जायेंगे, आपके शरीर की ठण्डी पड़ चुकी नसों में फिर से खून दौड़ने लगेगा, खौलने लगेगा इस बात पर कि जिस वण्डरफुल होप के साथ आपने मुझे यहां नौकरी करने भेजा था वह तो मेरे यहां आने से पूर्व ही मर गई थी। आपके दिल में वह पुरानी होप चाहे अभी तक भी जिंदा रही हो सकती है लेकिन मैं उस होप के बिना रह रहा हूं और अपनी लाइफ किसी दूसरी होप के साथ उसके सहारे बसर कर रहा हूं कि जाने वो दिन कब आयेगा या फिर आयेगा भी नहीं कि जब मैं आपसे पुनः मिल सकूंगा। आपको देख सकूंगा। हम दोनों की आशाओं में उतना ही डिफरैंस है जितना आप और मुझमें, भारत और विदेश में, डे और नाइट में। मेरी आशा पूरी होते ही आपकी आशा भी पूरी होने का मैं भी इन्तजार कर रहा हूं और पल-पल सोचता हूं कि

मेरे लिये आपके द्वारा देखे गये सपनों को मैं कहां तक साकार कर पाया हूं, आपकी कितनी हद तक आशा पूरी हुई है, यह तो मैं नहीं जानता और फिर जानकर करूं भी तो क्या ”’ ? यहां मैं कुछ भी करने की स्थिति में नहीं हूं और न ही आप। अगर आप कुछ करने की स्थिति में हैं भी तो आपने पत्र में मुझे कोस-कोसकर अपना दिल तो हल्का कर ही लिया। मैं किसके आगे जाकर रोऊं, दिल का बोझ उतारूं, किस भैंस के आगे बीन बजाऊं जाकर। आप ही बताइये और अपने कुछ भी सुनने को बजाय केवल मुझे ही दोष दिया है और जैसे कि आप बिल्कुल ही निर्दोष है, दूध की तरह धुले हुए। लैटर मे भरे गये व्यंग्य, आक्रोश, उलाहनों आदि को मैं दुबारा बताना तो नहीं चाहूंगा फिर भी आपकी तरह मैं भी आपको अपनी समस्यायें ही बताऊगां। जब आप तुलना करेंगें तो पायेंगें कि मेरे मुकाबले में आपकी समस्याओं का समाधान तो हो सकता है लेकिन मेरी समस्याएं इतनी गम्भीर है कि जितना आप हल करने की बात सोचेंगें उतना ही उलझनें लगेंगें। हम दोनों ही अपने-अपने स्थान पर सही है बस इसे समझ पाना मुश्किल है। जब समझ जायेंगें

तो हमारी समस्यायें बिल्कुल भी तंग नहीं करेंगी। अच्छे बच्चों की तरह शान्त हो जायेंगी।

एट फर्स्ट, आई वाण्ड टू नो डेट लैट मी नो डेट कि आप दादाजी के साथ, दादाजी परदादाजी के साथ और परदादाजी अपने पिताजी के साथ-साथ कितनी उम्र तक या कितने वर्ष तक साथ-साथ रहे ? यह न जब तक छोटे बच्चे थे, अविवाहित थे, सिर्फ काम-धन्धें की ट्रैनिंग लेते रहते थे, कोई भी रोजगार नहीं कर सकते थे। केवल पढ़ते थे या फिर वे अपने बड़े-बूढ़ों के साथ चौपाल लगाते थे, काम में हाथ बंटाते थे, खेतों में हल चलाते थे, काम करते थे क्योंकि तब तक वे अनुभवहीन थे लेकिन ज्यों ही उनकी उम्र बढ़ी, नौकरी लगी, विवाह किये, जमीन-जायदाद का बंटवारा हुआ। जो भी हिस्से में आया, सम्भाला या बेच दिया, कारोबार किया, नौकर हुए, जहां कंही भी नौकरी मिली और वे लोग माता-पिता की आज्ञा लेकर उन्हें रोता-बिलखता हुआ छोड़कर राम की तरह सीता को लेकर वन में चले गये या प्रवासी हो गये, वहीं के होकर रह गये। इसे प्राकृतिक नियम समझिये पिताश्री या फिर कि पूर्वजों की बनाई हुई परम्परा कि बेटी हमेशा पराया धन होती है जिसे

बचपन से ही पराया धन होने का अहसास दिलाया जाता है, बात-बात पर उसे सास ससुर के नाम से चिढ़ाया जाता है, उसके लिये दहेज आदि की व्यवस्था के साथ-साथ सामान और धन का संग्रह किया जाता है, उसका हिस्सा भी बराबर ही रखा जाता है। बेटी को सुहागन बनकर, किसी शरीफ खानदान की बहु बनकर, ससुराल जाकर किसी का घर आबाद कर, सन्तानोत्पन कर वंश-परम्परा जारी रखनी होती है। किसी सास-ससुर की सेवा करनी होती है, किसी का कुल दीपक जनना होता है। ठीक इसके विपरीत बेटा पराये शहर का नौकर होता है और उसे स्वयं का, अपना घर बनाने और बसाने, ठिकाने की तलाश में दर-दर भटकना होता है। बच्चे माता-पिता के साथ हमेशा कभी भी नहीं रहे। बच्चे नवजात परिन्दों की तरह आकाश में उड़ना सीखते हुए, उड़ाने भरते हुए, दूर तक उड़ते हुए तब तक नजर आते हैं जब तक कि उन्हें क्षितिज दिखाई नहीं देने लगता। मां-बाप उनके वापस घोंसलों में आने का इंतजार करते रहते है और वो फिर कभी भी वापस नहीं लौटते, लौटते हैं तो बहुत देर हो चुकी होती है। मां-बाप उनको जाते हुए देखते रहते हैं, आशिष देते रहते हैं, उनकी

आंखे खुली रहती हैं। बेटी-बेटे चले जाते हैं और बूढ़े माता-पिता उनके मंगलमय जीवन की कामना करते हैं और उनकी खुशी के लिये प्रार्थना करते हैं या वे भी वृद्वावस्था में कमजोरी की हालत में बेटे-बहुओं, बेटी-दामादों के पास बाकी जिंदगी का हिस्सा बसर करते हैं। तूफान में सफर की तरह।

आज मैं जिस मंजिल तक भी पहंुच चुका हूं उसका सारा प्रतिफल मुझे ही मिल जाना चाहिए यह मैं नहीं कहता बल्कि आपके साथ-साथ उस परिवार को भी मिलना चाहिये जिसके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व अब मेरे कंधों पर है, जिसे आपने मेरे जीवन की डोर -संग बांध दिया। मेरी बीवी, मेरी बेटी-बेटे। आपकी बहू, आपके पोती-पोते। आपने मुझे एक अच्छा रास्ता दिखाया, गन्तव्य बताया और आपका कर्तव्य पूर्ण हुआ। आपके बताए हुए रास्ते पर चलना या न चलना मेरा काम था। न चलता तो ठोकरों में रहता, धक्के खाता, दर-दर भटकता। चला तो एक मंजिल पा सका। उस मंजिल को पाने में मुझे क्या-क्या खोना पड़ा यह आपको बताना मैं उचित नहीं समझता क्योंकि मैं जो भी बनना चाहता था वो आज तक नहीं बन पाया और जो नहीं बनना

चाहता था वो बना। तकदीर ने मेरे साथ कितना बुरा और घटिया सुलूक किया और मुझे यह मानकर संतोष करना पड़ता है कि बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न भीख और जो भी बिन मांगे मिले वही समय की सबसे बड़ी सीख होती है। मुझे अपने जीवन का मनपसन्द काम आज तक नहीं मिल पाया और मैनें सदा इस अनचाहे काम को ही पूजा मानकर करना स्वीकार किया। काम किया तो अब तक जीवित हूं और अगर छोड़ देता तो पता नहीं क्या करता। भीख मांगकर गुजारा करता या मजदूरी करता। जिस दशा में भारत से मैं आया था उसका यहां केवल मात्र चाह में हूं या मेरे हजारों वे हिन्दुस्तानी भाई जो विदेशों में नौकरी करने के, धन कमाने के, धन कमाकर अमीर आदमी बनकर वापस लौटने के सुनहरे सपने संजोकर अपनी भली-चंगी जमीन-जायदाद बेचकर, गिरवी रखकर भी गलत हाथों में चले जाते हैं और वे गलत हाथ कोई और नहीं बल्कि हमारे द्वारा ही बनाये गये एजेण्टों के होते हैं जो नौकरी के लालच में आये हमारे भाइयों को अच्छा काम दिलवाने का झांसा देकर, उन्हें अच्छे-अच्छे होटलों के बदमाशों के हवाले कर खुद

फरार हो जाते है और वे सुनहरे सपने पालने वाले बरबाद हो जाते है। पुलिस द्वारा पकड़ लिये जाते हैं, न्यायालयों में पेश किये जाते है, सजा होती है, जेलों की काल कोठरी में सजा काटते हैं, सड़ी हुई दाल-रोटी खाकर सड़ते रहते हैं, जेल तोड़कर भाग जाने की कोशिश करते हैं फिर से पकड़ कर जेल में उम्र भर के लिये डाल दिये जातेहैं या सीमाओं पर गैर कानूनी रूप से सीमा पार करते हुए सेना या सीमा सुरक्षा बल द्वारा गोलियों से भून दिये जाते हैं, मौत के घाट उतार दिये जाते है। फलस्वरूप लावारिस करार देकर दफना दिये जाते हैं और मां-बाप उनके वापस आने का इंतजार करते-करते स्वर्ग सिधार जाते है और फिर उनकी मुलाकात स्वर्ग में ही हो पाती है। इस जमीन पर उनका नाम लेने वाला भी कोई नहीं बचता।

विदेश में नौकरी करने की इच्छा मेरी अपनी नहीं बल्कि आपके साथ-साथ पूरे परिवार की भी थी। आप सब एक तरफ थे और मैं अकेला दूसरी तरफ। आपका लाख विरोध करने के बावजूद मेरी एक भी नहीं चल पाई थी। आप सब अपनी जिद पर अटल थे और मैं आप सबके साथ महारथियों के बीच में

फंसा नादान अभिमन्यु सा। आखिर मुझे अपनी इच्छाओं को, आपके सबके तर्कों के ब्रहास्त्रों को अपनी दलील की ढ़ाल पर सहना ही पड़ा था। अकेले फंसे हुए अभिमन्यु की तरह मुझे मरना ही पड़ा था। मेरी इच्छायें मर रही थीं और आप सब दुर्योधन, द्रोणाचार्य, कर्ण आदि की तरह अपनी जीत पर खुश हो रहे थे। मुझे आप सबके सामने कैसे झुकना पड़ा था यह केवल मैं ही जानता हूं। इच्छा होते हुए भी मैं आपकी बात टाल नहीं सका था। आप सब तो कितने खुश थे। आपकी इच्छा मुझे हवाई जहाज में सवार होते हुए देखकर किस तरह से फल-फूल रही थी उसका अनुमान मुझे है और मेरी इच्छा मरती जा रही थी। लेकिन मैं तो हमेशा ही अकेला था। अभिमन्यु की तरह ही मर चुका था। पूरा परिवार ही मुझे लंदन भेजना चाहता था। अपना जीवन स्तर उठाना चाहता था। पूरे मोहल्ले में अपनी अमीरी, शानौ-शोकत का ढिंढोरा पीटना चाहता था। अपनी शान बढ़ाना चाहता था। मुझे विदेश भेजकर उस दिन आप कितने खुश हुए थे, इस बात का अनुमान आप लोग ही लगा सकते है। इसके विपरीत मुझे आपसे कहीं अधिक दुख हुआ था: आप सबसे, आप से, मां

से, बड़े भाई से, छोटे भाई से, बहन से, अपने परिवार से, मोहल्ले से, अपनी मिट्टी से और अपने देश से बिछुड़ते हुए। भारत में रोजगार की कमी है ऐसी कोई बात नहीं है बल्कि मेहनत-मजदूरी करते हुए हमें लज्जा, संकोच होती है। लोगों की निगाहों हमारा चरित्र गिरता है। हर काम को हम छोटा समझते है और शेखचिल्ली की तरह एक दिन में ही अमीर होने का सपना देखते हैं। पढ़-लिखकर मजदूरी करते हुए हमें शर्म जो आ जाती है। विदेशों की तरफ हम केवल इसीलिये भागते हैं कि वहां छोटे-मोटे काम करते हुए हमें कोई देख न सकें, हमे लज्जा महसूस न हो, किसी से हम नजरें न चुरा सकें, नजर बचाकर हम हर वो काम कर सकें जो किसी के भी द्वारा न किया गया हो या जिसको करने से सब इन्कार करते रहे हों। जो भी हमें ऐसे काम करते हुए देखेगा, हमसे पहले ही वह भी उनसे दो-दो हाथ हो चुका होता है। यहां पर इन लोगों के द्वारा हमें इज्जत की निगाह से नहीं देखा जाता बल्कि काले भारतीय के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है। कदम-कदम पर हमसे गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता है। घटिया-से-घटिया काम करवाये जाते हैं और बेइज्जती भी की

जाती है सिर्फ काले भारतीय होने के नाते। जो लोग इन्हीं से घबराकर विदेशों की तरफ भाग लेते हैं वो वही सब करने को मजबूर हो जाते हैं और 'मूसा डर के भागा मौत से, मौत आगे आ खड़ी' वाली कहावत चरितार्थ होते हुए दिखाई देती है। ऐसे कामों की बिल्ली के आगे मूसे खींचे चले आते हैं। ये नादान मूसे यह नहीं जानते कि बिल्ली से भला कब तक बचा जा सकता है, या तो ये कभी-न-कभी पकड़ ही लेगी, मार कर खा लेगी वरना इसके गले में घंटी बांधने की कोशिश करनी चाहिए। घण्टी लेकर बिल्ली का इन्तजार करना चाहिए। दे विल हैव टू ट्राई टू बेल द कैट। उनके पास कोई अन्य चारा भी नहीं रहता।

आपने मुझे विदेश इसलिये भेजा ताकि आप लोगो को अपना उच्च जीवन स्तर दिखा सकें। रंगीन टेलीविजन, वी.सी.आर. वीडियो कैमरा और न जाने क्या ऐसी कितनी ही विदेशी वस्तुओं की प्रदर्शनी लगाकर मेरा गुणगान कर सको, सीना फुला कर, नाक चढ़ाकर, भौंह सिकोड़कर, गर्व मिश्रित घमण्ड से कहने के हकदार हो सको कि (मैं) आपका बेटा भी विदेश में है, अफसर है, अच्छी तनख्वाह पाता

है और इस पर मजे की बात यह है डैड कि आप किसी भी प्रकार का आयकर भी नहीं देते क्योंकि विदेशी आय पर, विदेश से लाये जा रहे धन पर कोई टैक्स नहीं लगता। दुनियाभर की सुविधाओं का लाभ लेता है। भौतिक रूप से, शारीरिक रूप से चाहे कोई विदेश से वापिस आ जाये लेकिन मानसिक रूप से, आत्मिक रूप से वह वहीं उसी दुनिया में खोया रहता है, उसका जी भारत में नहीं लगता। हमेशा वहां के ही गुण गाता रहता है। वहां की दुनिया के सपने देखता रहता है। वापस जाने की तमन्ना लेकर पल-पल जीता रहता है और व्यवहार इस प्रकार का करता है जैसे कि उसे वापस बुलाया जा रहा है, कोई अदृश्य ताकत उसे अपनी तरफ खींच रही हो और अंत में धन का ताकतवर चुम्बक उसे खींचने मे कामयाब हो जाता है, वह हार जाता है धन के सामने। यहीं पर आकर सब रिश्ते गौण हो जाते है। बार-बार विदेश जाता है। धन का धन कमा-कमाकर ढ़ेर लगा देता है। उस धन पर बैठकर बाकी सब सदस्य अपने सम्बन्धियों के आगे धन की दीवार खड़ी करते रहतें हैं, बात-बात पर धन इन लोगों से बोलता है। बेटा विदेश का होकर रह जाता है और उसका परिवार

धन का। धन के आगे रिश्तों की गर्माहट ठण्डी पड़ जाती है। रिश्ते रिसने लगते हैं। सम्बन्ध की भावना खत्म हो जाती है।

अपने परिवार से कई हजारों किलोमीटर दूर, सात समुन्दर पार केवल पत्रों के माध्यम से मैं आप सबके साथ-साथ रिश्तेदारों की खैरियत, कुशलता जान पाता हूं। आपके सुख-दुख में शरीक होने केलिये जल्दी-जल्दी आ भी नहीं पाता। रिश्ते में दूर या पास के किसी भाई-बहन की सगाई, परीक्षा की सफलता, नौकरी की खुशी, पुत्र-रत्न की प्राप्ति या खुशी के अन्य सभी अवसरों पर प्रसन्नता महसूस कर सकता हूं, उनकी खुशी की प्रसन्नता को बढ़ाकर एक पैग भी लगा सकता हूं, उन्हें बधाई संदेश भिजवाकर उपहार भेज सकता हंू, मिठाई बंटवा सकता हूं, जश्न मना सकता हूं और उन सब खुशी के अवसरों पर लिये गये फोटो भी देखने की बलवती इच्छा रखता हूं। ताकि मुझे समय-समय पर पता चलता रहे कि हमारा वो नया मेहमान कैसा है, जिसने हमें खुश होने का अवसर प्रदान किया या वे नये जीवन-साथी कैसे हैं जिन्हें आपस में रहना है। इसके विपरीत किसी सगे-सम्बन्धी की गमी, दुख की घड़ियों में

केवल शोक संदेश भिजवाकर, श्रद्वांजलि देकर आपसे कई हजारों किलोमीटर दूर बैठा आपका यह बेटा केवल खून के आंसू ही बहा सकता है, महसूस ही कर सकता है। मेरी मजबूरी यह है कि डैड कि मैं आपसे जल्दी-जल्दी मिलने-देखने आ भी नहीं सकता। मेरी दशा ससुराल गई हुई उस विवश बेटी-की-सी होकर रह गई है जो अपनी इच्छानुसार मुस्कुरा भी नहीं सकती। सास की कठोर इच्छा के बिना मिलने नहीं आ सकती यहां तक कि उसकी आज्ञा के बिना पत्र भी नहीं भेज सकती। हंस नहीं सकती, रो नहीं सकती। केवल देख-सुन ही सकती है, कोई भी प्रतिक्रिया प्रकट नहीं कर सकती। सास की निरंकुशता के आगे वह किस कदर लाचार हो जाती है शायद यह आपकी कल्पना से ही बाहर की बात है। माता-पिता, छोटे-छोटे मासूम भाई-बहनों के प्यारे-प्यारे पत्र ही जैसे उस बेजान शरीर में जान डाल देते है, उसकी उदास-सी जिंदगी में खुशी बनकर बिखर जाते हैं, उसकी उदासी के साथी होते हैं, हमेशा घिरी रहने वाली उदासियों में आशा की किरणें होती हैं, संगी होते हैं, साथी होते हैं जिन्हें वह हमेशा बच्चों की तरह सीने से लगाये रहती है, उन्हीं के साथ

उसके रात-दिन उदय और अस्त होते हैं, पत्रों के आखर ही उसकी सांस के साथ-साथ चलते हैं। चिड़िया ही उसका संसार हो जाती हैं रंग-बिरंगे गुब्बारों की तरह।

मेरे जीवन की डोर वक्त के बेरहम हाथों में नहीं बल्कि उन कम्पनियों के निर्दयी नियमों में जकड़ी हुई है जिनमें मुझ जैसे असंख्य हिन्दुस्तानी मजदूरी करते हैं। वक्त ने हमें उनके हाथों की कठपुतली बनाकर रख दिया है। हम यदि यहां से छूटना भी चाहें तो आसानी से छूट भी नहीं सकते। चाहकर भी हम यहां से निकल नहीं सकते क्योंकि इन कम्पनियों के नियम कुछ इस प्रकार से बनाये गये हैं कि हम जैसे मजदूर जिंदगी भर के लिये इनके गुलाम बनकर रह गये है। हमारी तनख्वाह का एक बड़ा भाग हमेशा उनके यहां जमा रहता है ताकि हम कभी भी काम छोड़कर उनके यहां से हमेशा के लिये जा ना सकें और उनके पास वापस आना ही हमारी त्रासदी है, काम करना हमारी मजबूरी। चाहते हुए भी हम कहीं और काम करने के बारे में सोच भी नहीं सकते। इनके पास जमा हमारी बड़ी रकम का लालच हमें कहीं भी और जाने से गाहे-बेगाहे

रोकता रहता है। इसी लालच के वशीभूत होकर हमें बार-बार यहीं पर आना पड़ता है।

आपने लिखा पिताश्री कि प्रत्येक बाप दशरथ की तरह पुत्र वियोग में तड़प-तड़पकर जान दे देता है, सारी उम्र अपने पुत्र का भविष्य बनाने में खपा देता है। पुत्र का भविष्य बने या न बने लेकिन बाप की उम्र तो दांव पर लग ही जाती है। दांव पर लगने के बाद ही कुछ-न-कुछ हासिल हो सकता है। कुछ प्राप्त करने के लिये कुछ-न-कुछ तो खोना ही पड़ता है। बिना कुछ ही खोये कुछ भी नहीं पाया जा सकता और कुछ पाने की आशा भी किस प्रकार की जा सकती है। बिना कुछ खोये पाने की आशा करना कोरी मूर्खता के सिवा कुछ भी नहीं है। ये खोने और पाने की परम्परा या रिवाज तो सदियों से चला आ रहा है और हम सब इससे जुड़े हुए हैं। आपके परदादाजी ने आपके दादाजी को और आपके दादाजी ने आपके पिताश्री को और आपके पिताश्री ने आपको खोया है। ये खोने का क्रम कभी भी रूकेगा नहीं। आपने मुझे खोकर कोई नया काम नहीं किया है, अगर नया भी किया होता तो आपका ही स्वार्थ था इस काम में कि मैं विदेश में जाकर काम करूं।

आपकी तरह मुझे भी अपने पुत्र को खोने के लिये तैयार रहना पड़ेगा। ये दुनिया एक मेले की तरह ही है जिसमें लोग किसी को खोते हैं और किसी-न-किसी को पाते हैं। खो कर दुखी होते हैं और पाकर अपना दुख भूल जाते है। खुश हो जाते है कुछ देर के लिये यह सोचकर कि चलो कोई तो मिला ताकि खोने वाले का दुख भूलकर पाने वाले को देख-देखकर अपना गम भूलते रहें। दुनिया में बहुत कम लोग ऐसा कर पाने में कामयाब होते हैं वरना खोने वालों का इन्तजार करते-करते प्राण त्याग देते हैं। ये दुनिया एक रंगमंच है, जिंदगी एक नाटक है, हर इन्सान एक अदाकार है। जो कदम-कदम पर अदाकारी करता है जिसमें आप दशरथ का रोल अदा कर रहें हैं, मैं बनवासी राम का, मेरी पत्नी सीता का, बाकी सब इसी तरह के रोल कर रहे हैं। अगर आपके रोल में रोना ही लिखा गया है तो इसमें मैं क्या कर सकता हूं, इसमें मेरा क्या दोष है ? बताइये।

इसमें दोष मेरे जैसे राम बेटे का नहीं बल्कि आप जैसे, दशरथ बुजुर्गों का है। सारा दोष ही उनके सिर पर लगाया जाना चाहिए क्योंकि जब बाप अपने

ही हाथों श्रवण पुत्र को बनवास देकर, विदेश भेजकर राम बना डाले, जीवन भर के लिये किसी देश का प्रवासी बना डाले तो मैं समझता हूं कि कोई भी बेटा श्रवण पुत्र नहीं बन सकता। बुढ़ापे में पिता का सहारा नहीं बन सकता। अन्धे की लाठी नहीं बन सकता। विदेश में रह रहे, नौकरी कर रहे किसी कर्मचारी का बूढ़ा बाप जब भी स्वर्ग सिधार जाता है, उसकी अर्थी को सात समुन्दर दूर बैठा बेटा कंधा देने में असमर्थ हो जाता है तो सम्बन्धी बड़े ही घमण्ड से सीना फुलाकर जवाबदारी करते है: बेटा बरसों से विदेश में है, चिट्ठी मिल नहीं पाई होगी, (लीव) छुट्टी जल्दी-जल्दी मिल नहीं सकती। मिले भी तो क्या। समय पर पहुंच नहीं सकता, हवाई जहाज में सीट बुक नहीं हो सकी होगी, आ नहीं सका। बताइये पिताश्री। इसमें दोष किसका हैं ? बेटे को बाहर भेजने वाले दशरथ जैसे बाप का या समय पर पहुंच न सकने वाले राम जैसे बेटे का। दशरथ जैसे बाप का या राम जैसे बेटे का, मंथरा जैसी दासी का, कैकेयी जैसी मां का, भरत जैसे भाई का जिन्होनें बेटे को राम बनवाया। बेटा राम बनने पर मजबूर हो जाता है। राम 14 बरस बाद अयोध्या वापस लौट आया था किन्तु परदेशी

और प्रवासी बेटा कभी नहीं लौटता, जिंदगी भर के लिये विदेशी हो जाता है। बाप की किरिया-करम, रस्म पगड़ी आदि में शामिल होना या न होना केवल औपचारिकता भर रह जाता है। बाप की मौत के बाद तमाम सम्बन्धी भी उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं, दूरी बढ़ा लेते हैं और वह प्रवासी बेटा विदेशी वातावरण में जीवन-यापन करने लग जाता है विदेश में शादी करवाकर, विदेशी नागरिकता प्राप्त कर लेता है और फिर अपना ही देश पराया लगने लगता है, विदेश हो जाता है। अपने ही देश में विदेशी नागरिकों की तरह घूमने आता है, छुट्टियां बिताने आता है कभी महीने भर के लिये तो कभी दो-चार महीने के लिये। आपने जिस पौधे से बड़ा होकर, वृक्ष बनकर फल देने, छाया देने के लिये आशा की है यदि वही पौधा माली द्वारा किसी दूसरे के आंगन में रोप दिया जावे, माली खुद ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ले तो उस पौधे का क्या कुसूर। पौधे को तो हर आंगन में फलना-फूलना है चाहे यहां चाहे वहां, अंतर केवल मिट्टी का है जिसे आपने नहीं तो किसी दूसरे ने सींचा, पानी दिया, खाद दी, हर प्रकार के मौसम से रक्षा की, पौधा तो पेड़ बनकर वहीं आश्रय देगा,

वहीं पर फल-फूल देगा जहां पर उसकी परवरिश हुई, उसे पनपने दिया गया। पेड़ अपनी जड़ सूखने या गिरने के बाद ही छोड़ता है। हरे-भरे वृक्ष को कभी भी काटने या गिराने की कोशिश नहीं करनी चाहिए वरना वृक्ष तो मरेगा ही साथ में माली को भी कुछ नहीं हासिल हो पायेगा। मिट्टी बदली जायेगी तो वृक्ष कंही का भी नहीं रहेगा। उधर जा नहीं पायेगा और इधर जी नहीं सकेगा।

माफ कीजिये पिताश्री। शायद मैं कुछ ज्यादा ही कह गया हूं आपकी शान के खिलाफ और यह तो उसके बदले में कहा गया है जिसे आपने आज तक जाना नहीं था, आपने अगर कभी यह जानने की कोशिश भी की होती तो शायद मुझे इतना कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं होती। आपने अपनी समस्या बताई तो मुझे भी आपको बताना ही पड़ा कि मैं यहां पर कितना सुख से जीवन-बसर कर रहा हूं। अपनी समस्या बताकर मैं कितना हल्कापन महसूस कर रहा हूं शायद आप इस बात का अनुमान भी नहीं लगा पायेंगे। हम दोनों की समस्याओं की प्रकृति एक जैसी नहीं है, अलग-अलग है। किन्तु हम न कभी अलग थे और न होगें। शायद किसी ने ठीक

ही कहा है कि बेटा तब तक बाप का रहता है जब तक अविवाहित, बेरोजगार होता है लेकिन बेटी हर सूरत में बाप के दिल में रहती है। उसका सम्बन्ध कभी भी बाप से समाप्त नहीं होता। खुदा न करे पिताश्री मैं भी अगर किसी वायुयान-दुर्घटना में समाप्त हो गया होता, मेरी फलाइट कभी कैश हो गई होती तो आपको मेरे होने के बजाय मेरे न होने या सम्बन्ध से ही सब्र करना पड़ता। आप सारी उम्र मेरी याद में अपनी किस्मत पर रोते रहते। आपके अरमान धरे-के-धरे रह जाते, आपकी तमाम आशाओं पर पानी फिर जाता और तमाम सुख मिट्टी में मिल जाते।

इसी आशा के साथ पत्र बन्द करने जा रहा हूं कि भविष्य में आप किसी को भी सीना फुलाकर, नाक चढ़ाकर, घमण्ड से यह नहीं कहेंगे कि आपका श्रवण पुत्र राम हो गया, सदा के लिये विदेश में आबाद हो गया। अब कभी वापस नहीं आयेगा।

हम सबकी तरफ से आप सबको चरण स्पर्श और नमस्कार।

पत्रोतर की आशा के साथ।

आपका राम बेटा

श्रवण कुमार
(साउथाल, लंदन)

5.मेरी बहन है वो

हम दो थे।

मैं प्रवीण और वह तारा।

अभी तक हम लोग इतने ज्यादा घनिष्ठ नहीं हुए थे कि एक-दूसरे के घरों तक यात्रा कर घुस-पैठ कर बाकी के सदस्यों की जानकारी रख पाते। सुबह स्टेशन पर आते तो दूर से ही केवल हैलो-हैलो हो जाया करती और शाम को लौटते वक्त भी यही क्रम चलता रहता। फिलहाल हमारी मित्रता केवल कम्पार्टमेण्ट तक ही सीमित थी। धीरे-धीरे हम लोगों ने आपस में एक-दूसरे के घर तक सेंध मार कर घन्ष्ठिता बढ़ाने का साहसिक कदम उठाया था। अपने-अपने डिपार्टमेण्ट का परिचय देकर पूछताछ की थी और अब तीसरा मेण्ट बाकी था। किसी को भी हमारे किसी के अपार्टमेण्ट की जानकारी नहीं थी, लोकेशन का पता नहीं था और न ही आज तक कोई शुभ अवसर ही हाथ लगा था। केवल कम्पार्टमेण्ट में ही साथ-साथ उठते-बैठते थे। दैनिक सफर का डेढ़ घण्टा बिताने के मकसद से कभी ताश खेलते, कभी चुम्बक वाली शंतरज की बिसात बिछाते, यात्रियों को

आकर्षित करते उनके साथ खेलते। कभी सांप सीढ़ी और कभी-कभी साथी यात्रियों से मित्रता कर लिया करते या फिर पूरे सफर में गाड़ी के सारे-के-सारे कम्पार्टमेण्ट गिनते रहते, उनके नम्बर याद करते। हर स्टेशन पर पानी पीने के बहाने, उतरते, एक डिब्बे से उतरकर दूसरे में सवार हो जाते। तरह-तरह की रंग बिरंगी महिलायें देखते और अपना-अपना ईजाद किया हुआ कोड वर्ड लागू कर देते ताकि कभी संकट आ जाये तो किसी को मालूम भी न पड़े और अगर (बाई चांस) अचानक पता लग भी जाये तो तुरन्त टाल-मटोल की जा सके। रोजाना हम एक तयशुदा ठिकाने पर ही मिलते थे, तदुपरान्त समय पास करने का प्लान बनाते, बाजार में घूमने जाते, समय पर स्टेशन आते, गाड़ी में सवार होते, घर पंहुचते, दूसरे दिन फिर मिल जाते। समय निकालने की चिन्ता का हमने पक्का जुगाड़ बिठा दिया था।

कार्यालय से पांच बजे छूटते ही शहर की भीड़-भड़क्केदार सड़कों पर, यातायात में फंसे, चींटी की चाल से खिसकते, तंग गलियों में स्त्रियों से टकरा जाने की ताक में अनमने-से व्यर्थ ही घूमते रहते, आवारागर्दी करते हुए सन्तोष हमें मिला। अपने

सामूहिक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उसने कहा कि दोनों रेलवे स्टेशन जाकर, गाड़ी में बैठने योग्य स्थान की तलाश कर, उसकी प्रतीक्षा करें। हम दोनों के कुछ भी बोलने से पहले ही वह अचानक बोला-

"हमारे कार्यालय में आजकल एक अजीब ही तरह की महाभारत चल रही है।"

"इस कलयुग में काहे की महाभारत भैया ? अगर वही युग दुबारा आ जाये तो क्या कहने। हमारे जैसा सच्चा आदमी किसी के द्वारा मुफत में सताया नहीं जाता। अगर सताया भी जाता तो तुरन्त शापित हो जाता। हम सबमें भी किसी को भी श्राप देने की ताकत होती।" तारा ने उसके वाक्य के साथ अपना भी एक और वाक्य भी जोड़ दिया था।

"तारा भैया ! उस समय तो केवल एक ही महाभारत हुई थी लेकिन इस समय में हर वक्त, हर जगह, हर घर में, हर दफतर में महाभारत हो रही है। हर आदमी दुर्याेधन बना हुआ है। हर जगह कौरव भी है और पाण्डव भी।" वह कुछ ज्यादा ही दुखी इन्सान था। बात-बात में वह रामायण और महाभारत की मिसाल दिया करता था। लेकिन रामायण और महाभारत काल में भी जुल्म का बोल-

बाला था और फिर इस युग में होना कोई विशेष बात नहीं है।

"तुम्हारे दफतर में आजकल कैसी महाभारत खेली जा रही है भैया। हमें भी बताओ तो जरा-सी।" तारा ने उत्सुकता से जानना चाहा था।

"देखो यार। ये जो सरकारी कर्मचारी हैं न सब-के-सब पाण्डव हैं और गैर सरकारी कौरव हैं जैसे कि ठेकेदार और दूसरे सप्लायर्स। इन सरकारी पाण्डवों ने धर्मराज युधिष्ठर की तरह, द्रोपदी रूपी जमीर को दांव पर लगा दिया है। ये बाहर के लोग दुर्योधन की सेना की तरह पूरे दफतरों में छा गये हैं, सरे-आम पाण्डवों को जुआ खेलने के लिये आमन्त्रित और मजबूर कर रहें हैं ताकि उनके हारने की दशा में उनकी द्रौपदी का चीर हरण किया जा सके और उन्हें दफतरों से बाहर, वनवास या जेल भेजकर सजा दिलवाई जा सके। अधिकारी या तो धृतराष्ट्र की तरह लालच में अन्धे हो चुके हैं या फिर भीष्म पितामह की तरह ताकतवर होते हुए भी कुछ नहीं कर पा रहे हैं, सिर झुकाकर बैठे हुए द्रौपदी का चीर हरण होते हुए कायरों की तरह, दर्शकों की तरह तमाशा देख रहें है। वे कुछ भी कर सकते हुए, कुछ भी नहीं कर

पा रहें है।'' संतोष बात-बात पर स्पष्टीकरण की तरह मुद्दा समझा रहा था।

''और-तो-और इस महाभारत के महा-कलयुग में द्रौपदी खुद ही दांव पर लगने के लिये तैयार बैठी है, वह बेसब्री से इंतजार कर रही है कि कोई हमारे जैसा बेईमान बन्दा आये और उसे दांव पर लगाकर युद्व को आमन्त्रण दे। बस दांव पर लगाने वालों की कमी है। दांव पर लगती है द्रौपदी बस लगाने वाला चाहिए।'' वह तारा की दलील थी।

''बिल्कुल सही फरमाया आपने। आज का समय ही ऐसा है भैया जिसने भी द्रौपदी को दांव पर लगाया वहीं समझदार और जिसने नहीं लगाया वो महा-पागल। ये तो समय का तकाजा है कि जैसे ही द्रौपदी मिले उसे दांव पर लगा दो बस। जब गंगा बह रही हो तो हाथ धो ही लेने चाहिए बल्कि जहां तक संभव हो सके तो स्नान ही कर लेना चाहिए। गरीबी का पाप धो लेना चाहिए। रिश्वत का पुण्य कमाना चाहिए।''

''जब तक स्नान नहीं किया जायेगा तो गंगा मैली नहीं होगी, रिश्वत नहीं लेंगे तो पाप नहीं बढ़ेगा, द्रौपदी अगर दांव पर नहीं लगेगी तो महाभारत कैसे

होगा ? अगर महाभारत नहीं होगा तो पाप कैसे बढ़ेगा। पाप नहीं बढ़ेगा तो कृष्णजी कैसे जन्म लेंगे और अगर कृष्णजी अवतार नहीं लेंगे तो कंस कैसे मारा जायेगा, युग कैसे बदलेगा ? युग नहीं बदलेगा तो''। संतोष की बात बीच में ही काट दी गई थी युग को बीच में लाकर।

''चलो छोड़ो यार इन सब बातों को। महाभारत और द्रौपदी की बात तो दफतर तक ही सीमित रहने दो। उसे वंही पर छोड़ आया करो। दफतर में तो सारा दिन इस तरह की लेने-देने की बातों से तो पागल हो ही जाते हैं अब फिर क्यों इस फालतू की बात करके मूड खराब करते हो। इससे कुछ हासिल तो होने को नहीं है फिर क्यों न कोई और बात करें दूसरे काम को। खाने-पीने की। समय काटने की।'' मैंने उससे उस बात को वहीं पर छोड़ देने का अनुरोध किया था।

''अभी स्टेशन जाकर क्या करेंगे यार ? गाड़ी के प्रस्थान में अभी पूरा एक घण्टा बाकी है। अभी वहां जाकर क्या मक्खियों की जान लेने का क्या इरादा है ?''तारा ने प्रश्न किया।

‘‘ तो क्या हुआ। बाद में स्थान भी तो नहीं मिलता। बेकार में गाड़ी में एक से दूसरे डिब्बों में धक्कमपेल में यात्रा करनी पड़ती है। लम्बे सफर के यात्रियों से बेमतलब उलझना पड़ जाता है। कई लोग कण्डकटरों से हमारी गैर कानूनी यात्रा की शिकायतें करते फिरते हैं। हमें बेमतलब कण्डकटरों से माथा मारना पड़ता है क्योंकि तुम्हें तो पता ही है कि हम रिजर्व कोच में यात्रा नहीं कर सकते। ये तो इन कण्डकटरों की मेहरबानी समझो, उनकी इन्सानियत या फिर हम सब दैनिक यात्रियों की एकता। वरना कण्डकटर कभी किसी एकाध को दिवाल हुआ है कभी। इसी समस्या से बचने के लिये ही तो कह रहा हूं कि भैया अभी से ही जाकर सीट की तलाश कर लो अन्यथा बगुला भगत की तरह एक ही टांग पर खड़े रहकर सफर करना पड़ेगा घण्टे भर का।’’ संतोष का उत्तर था।

‘‘स्थान न मिले यही तो मैं चाहता हूं।’’ मैने कहा था।

‘‘अजीब आदमी है यार तू भी। यात्री घण्टों पहले स्थान रोकने की कोशिश करते हैं, रिजर्वेशन करवाते हैं, कुलियों को मेहनताना देकर सीट का

प्रबन्ध करवाते हैं और एक तू कहता है कि हमें सीट न मिले।'' संतोष खीझ गया था।

''देखो दोस्तो और मेरे सह-दैनिक यात्रियों। मेरी बात पर गुस्सा मत करो। बर्फ जैसे ठण्डे दिमाग का जरा-सा-प्रयोग करो और सोचकर देखो और गौर फरमाओ। स्थान न मिल पाने से हमें एक बड़ा फायदा हो सकता है। थ्री टायर में हम तीनों, जहां कंही भी हमारा मन करेगा, किसी भी लेडिज केबिन में जाकर खड़े हो रहेंगे। बैठने का स्थान होगा तो अच्छा नहीं तो किसी भी महिला को ढंग से सम्बोधित कर थोड़ा सरकने को कहकर साथ बैठ सकेंगे। उसके बदन की गर्मी महसूस कर सकेंगे। बाद में आपसी बातचीत करते हुए थोड़ा-थोड़ा सरका-सरकाकर मैं, तू और वह भी तीनों एक साथ बैठ सकेंगे। वैसे भी कई महिलायें नरम दिल होती है। हमें अपने पास में खड़ा देखकर कोई-न-कोई तो बैठ जाने को अवश्य ही कहेगी। धन्यावाद देते हुए बाद में हम अपना मतलब हल कर लेंगे।'' मेरा तर्क उन्हें वास्तव में वजनदार लगा था।

''क्या बात है भाईसाहब ? इस कलयुग में इतने पवित्र और उच्च विचार !

तुमने तो हमारा तीसरा नेत्र ही खोलकर रख दिया। जाने वो तो कब से बन्द पड़ा था। वास्तव में तुम तो बहुत ही अजीब आदमी हो और तुम्हारी दलील भी एक कुन्टल से कम नहीं।'' मेरी बात सुनकर वे दोनों हंसते हुए बाले थे -

''हमने तो कभी ख्वाब में भी नहीं सोचा था कि तू भी कभी इस प्रकार की फायदेमन्द, तीसरा नेत्र खोलने की बात भी कर सकता है जिस पर हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा। जिसे हमने तो क्या कभी किसी आम आदमी ने भी सोचा नहीं होगा। परन्तु सभी करते है जिसकी हमें भी हमेशा तलाश रहती है और अवसर मिलते ही कोई भी व्यक्ति बहती गंगा में हाथ धोने से नहीं चूकता।'' तारा बोला।

''वैसे भी अभी से स्टेशन पर रखा ही क्या है ? वास्तविक रौनक तो गाड़ी के प्रस्थान के समय ही होती है। उतनी देर तक हम बाजार की रौनक, शहर की खूबसूरती, साइकिलों और मोटरसाइकिलों, स्कूटरों और दूसरे दुपहिया वाहनों पर सवार हुई बालिकाओं तथा तरूणियों की जवानी के दर्शन कर आंखों को बलवर्धक औषधि का सेवन करना चाहिए। उनके यौवन की प्रशंसा में चार चांद लगाने के

कमेण्ट्स करने चाहिए ताकि हमें बार-बार खुदा के हसीन करिश्मों पर अचम्भित होने का मौका मिले।'' संतोष की राय थी।

''चलो फिर चलते हैं। बाजार की तरफ मुंह करते है। कुछ-न-कुछ तो ग्रहण किया ही जाये एक घण्टे के समय में।'' हम तीनों ही एक साथ बोले और समय की भी यही मांग थी, उसे पूरा करना हमारी मजबूरी, क्या करते फिर भला ?
हम तीन थे। तीन तिलंगे।

पहला मैं प्रवीण, दूसरा तारा और तीसरा संतोष जो हमें बाद में मिला और बात-बात में रामायण या महाभारत काल को याद करना और उसकी दलील देना जिसकी आदत थी।

''शहर की गलियों में घूमते-घूमते जून की गर्मी सताने लगी है। धूप अभी भी चिलचिला रही है। पसीने से परेशानी बढ़ रही है। तौबा कितनी गर्मी है। अब और चल पाना मुश्किल हो रहा है। क्यों न हम सब वसन्त मैंगो बार चलें। पंखे तथा कुलर की ठण्डी हवा में बैंठेंगे। गद्देदार सोफे में फुदकते रहेंगे। घण्टे भर तक तैयार पूरे माल का मुआयना करेंगे,, रेट पूछेंगे, बर्फ का पानी पीकर आइसक्रीम खायेंगे।

मैंगो शेक पीना चाहेंगे। आइसक्रीम खाकर, मैंगो शेक पीकर शरीर को ताजगी, गर्मी से छुटकारा, दिमाग को ठण्डक मिलेगी। सामने कोल्ड ड्रिंक पीती हुई किसी भी रूपसी को देखकर आंखों को टॉनिक, दिल को सुकून मिलेगा। दीवारों पर लगे हुए हुए दर्पण में से उसकी जवानी के बार-बार दर्शन करने से हम भी धन्य हो जायेंगे और मन को तसल्ली मिलेगी कि हम भी अब जवानी की दहलीज पर कदम रख चुके हैं, बचपन को पीछे छोड़ चुके हैं। बीत गये दिन बचपन के, दाढ़ी-मूंछो के दिन आ चुके हैं। हम पर भी जालिम जवानी का भूत सवार हो चुका है। हम भी बागो में, होटलों में, पार्टियों में, ट्रैफिक जाम करके भीड़ में या माता-पिता के सामने प्यार भरा गाना गाने के काबिल हो चुके हैं और अब तो हम भी किसी कन्या को कह सकते हैं कि 'हमें तुमसे प्यार कितना, ये हम नहीं जानते मगर जी नहीं सकते तुम्हारे बिना। यहां तक कि किसी कन्या के ठाकुर बाप से उसका हाथ भी मांग सकते है। आलतू-फालतू में आधा घण्टा बार में बैठकर बाकी बचा समय अफरा-तफरी में व्यतीत करेंगे।'' गर्मी को

देखते हुए तथा समय गुजारने की गरज से संतोष का सुझाव था।

"समय काटने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा। व्ही विल हैव टू डू समथिंग टू किल द टाइम। इधर-उधर मुंह मारने की बजाय बसन्त मैंगो बार चल कर बैठना ही ठीक रहेगा। पहले अपनी-अपनी जेबों की तलाशी ले लो और वहां बैठने का प्रबन्ध करो। पैसे देखो, गिनो, खर्चे का हिसाब लगाओ और कूच करो मंहगाई के दुश्मन से लड़ने के लिये।" तीनों एक राय होकर बार बार में जा बैठे। तारा की दृष्टि दरवाजे की तरफ थी। हम दोनों उसके सामने वाली मेजों पर थे। उसका ध्यान बार में आने-जाने वालों पर, काउण्टर पर बैठे हुए ग्राहकों से पैसे ले रहे मालिक पर, सर्विस कर रहे वेटरों पर, बार में बैठे हुए ग्राहकों पर, सामने तैयार हो रहे पकवानों आदि पर थी। वह चारों तरफ का जायजा लेने में व्यस्त था। व्यस्त तो हम भी थे। लेकिन वह कुछ ज्यादा ही दिखावा कर रहा था। वेटर तीन गिलास ठण्डे पानी के जग के साथ लेकर आ रहा था कि अचानक तारा बोल पड़ा -

"हाय रे मार डाला जालिम की खूबसूरत जवानी ने। क्या चीज है यार। आग है आग। क्या सुन्दरता दी है खुदा ने इसे। खुदा का शुक्रिया अदा करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं है जिसने इसे बनाया। ऐसी अगर मेरे पास होती तो दुनिया ही जलकर राख हो जाती लोगों की।" इससे पहले कि हम कुछ देख, कुछ समझ पाते दुबारा उसके मुंह से निकला, उसकी सुन्दरता ने उस पर शायद कोई मन्त्र मार दिया था।

"मुझे मिलने दो। फिर देखना दोस्तो। सम्बन्धियों ! लोगों का दिल मैं किस-किस प्रकार से दुखा-दुखा कर जलाया करूंगा। मगर हाय री किस्मत। इतनी जल्दी से मिलती ही कहां है, मिलने का अभी कोई योग ही नहीं बनता। दूर-दूर तक आसार ही नजर नहीं आते। जिस दिन भी मिल गई, मैं सिखा दूंगा कि दिल कैसे जलाया जाता है। दिल का जलाना क्या होता है। मुझे तो उस आदमी की तकदीर पर जलन हो रही है जिसको इस सुन्दरी का अंग-संग, हाथ-साथ, वास और सहवास मिला, इसका पत्नीत्व मिला, इसकी सोहबत मिली, ऐसा जीवन-साथी मिला। जिसके बच्चों की यह मां बनेगी। और

जिसकी महबूबा।'' उसकी नजर मारूति से उतरकर बार में प्रविष्ट होती हुई किसी नव-विवाहिता की विस्फोटक अदाओं और आग लगाने वाली गतिविधियों पर थी।

''छोड़ यार तारा इस बात को यंही पर।'' संतोष बोला।

''क्यों भई संतोष। आखिर क्या कमी है इस दुल्हन में ?''

''तुझे तो बिल्कुल भी परख नहीं है, बिल्कुल भी तरीका नहीं है सुन्दरता आंकने का। इसमें है ही क्या जो तू इसके पीछे पागल हुआ जा रहा है। तेरे दिल में जिसने आग लगा कर रख दी है। इसका मतलब है तझे तो पता ही नहीं है कि जालिम सुन्दरता क्या चीज होती है ? कैसे परखी जाती है ? हमसे पूछ कि इसका अनुमान कैसे लगाया जाता है ? थोबड़ा तो देख जरा इसका। जरा भी काम का नही, बिल्कुल ही सड़ी हुई रोटी जैसा। रोटी जब ज्यादा जल जाये तो किसी के भी काम की नहीं रहती न। जैसे कि तेरी इस सुन्दरी का थोबड़ा भी है। फंुसियों से किस प्रकार से भरा पड़ा है ? उस पर मास्क की तरह मेकअप कर रखा है जो बिल्कुल

भी नहीं जंचता। कितना अटपटा-सा लगता है। बिल्कुल ही बनावटी और दिखावटी-सा लगता है। बेकार। साथ ही लगता यह भी है कि खून साफ नहीं है इसका। वरना नैन-नक्श तो वाकई जोरदार है। खून साफ हो तो बाहर से ही चेहरे का पता चल जाता है। चेहरा ही हमारे शरीर का लुकिंग ग्लास है। इससे हमारे शरीर की किसी भी बीमारी का पता लगाया जा सकता है। खिलखिलाता चेहरा, सेहती स्मार्ट चेहरा, सैक्सी और मुरझाया हुआ चेहरा रोगी की पहचान है। खून साफ करने के लिये इसे साफी पीनी चाहिए। खून की कमी सी लगती है इसकी सेहत को देखकर। दो-चार बोतल ले लेना चाहिए। कुछ लोग गाड़ियों की शोभा बढ़ाते हैं ओर कइयों की गाड़ियां। जैसे कि यह नव-विवाहिजा। अच्छे वस्त्र, मंहगे आभूषण तथा विदेशी गाड़ियों से सौन्दर्य नहीं खरीदा जा सकता। केवल पैसे के बल पर समाज में मान-प्रतिष्ठा बनाई जा सकती है। सुन्दरता की पूर्ति तो केवल वो ऊपर वाला ही कर सकता है फुर्सत के क्षणों में। पूरी दुनिया ही उसका परिवार है। उसके द्वारा प्रदान की गई सुन्दरता संसार के किसी भी कोने में हो सकती है। किसी में भी। अमीर में भी,

गरीब में भी। हिन्दू में भी, मुसलमान में भी, सिख में भी और ईसाई में भी। जिसे अक्सर कहा जाता है कि इस सुन्दरी को तो नीली छतरी वाले ने फुर्सत में तराशा है। वैसी सुन्दरता और दौलत का साथ बहुत कम जगह पर मिलता है। जहां सुन्दरता होती है वहां दौलत नहीं, जहां दौलत होती है वहां सुन्दरता नहीं ठीक वैसे ही जैसे कि तुम्हारी इस दुल्हन की सामान्य सुन्दरता और इसकी विशाल दौलत और कभी-कभी तो यहां तक भी कहा जाता है कि भगवान किसी गरीब को सुन्दर बेटी न दे। बेटी दे तो उसे दौलत भी दे देवे ताकि उसे विवश होकर किसी धनवान बूढ़े के साथ बंधना न पड़े और जल्दी विधवा का रूप धारण भी न करना पड़े। अमीर तो इसके बल पर किसी की भी खरीद कर सकते हैं। लेकिन गरीब केवल भगवान और अपनी किस्मत को ही कोसता रहता है।'' संतोष इस छोटी सी बात का लम्बा-चौड़ा विषय बनाकर बैठ गया था।

''बड़े घरानों की यही तो सबसे बड़ी समस्या है। सर्वप्रथम धन कमाने की समस्या, फिर उसे छिपा-छिपाकर रखने की समस्या। कमाकर छिपाये हुए धन को खाने की चिन्ता में दिन-रात अमीरों का

खून जलता रहता होगा। इसलिये अमीर लोग अक्सर बीमार और कमजोर होते हैं, ढंग से खाना भी नहीं खा सकते। खा भी लें तो हजम नहीं कर सकते। केवल मूग की दाल पर जिन्दा रहते है। खून की हमेशा ही समस्या रहती है। परिणामस्वरूप तरह-तरह की बीमारियां उन्हें उम्र भर घेरे रहती हैं। कोई दिल की बीमारी से मर जाता है तो किसी को सरकार मरने पर मजबूर कर देती है टैक्स पर टैक्स लगाकर। इन्कम टैक्स, सैल्स टैक्स, वैल्थ टैक्स, गिफट टैक्स, रोड़ टैक्स, आदि-आदि। टैक्स के नीचे बेचारा इस कदर दब जाता है कि फिर कभी उठ ही नहीं पाता। दिमागी तौर पर स्वतन्त्र नहीं हो सकता। टैक्स देता है तो पास में कुछ नहीं बचता, नहीं देता है तो चोर कहलवाता है। टैक्स देते-देते जीता है और टैक्स देते-देते मरता है। लेकिन टैक्स कभी भी नहीं मरता इन्सान को मारकर भी नहीं। पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। एक बार जब चोर कहलवाया गया तो क्या छोटा, क्या बड़ा। चोर तो चोर है। छोटे-बड़े से कुछ नहीं होता। एक बार चोर बनने के बाद कोई भी दुकानदार ईमानदार नहीं कहलवा सकता चाहे वह कितना भी बड़ा साधु क्यों न हो जाये। एक बार

माथे पर चोर शब्द लिखा गया तो जिंदगी भर नहीं मिट सकता।

"और-तो-और इस कार वाले दूल्हे की शक्ल तो देखो जरा गौर से। कैसी बदसूरत है, छिः घिनौनी। वैसी ही जैसी कि हमारी हिन्दी फिल्मों में अकसर दस्यु लोग धनवान, बदसूरत और अत्याचारी दूल्हे को शादी की घोड़ी पर ही मारकर बेचारी दुल्हन को उठाकर ले जाते है। वह सुहागरात से पहले ही गोली का शिकार हो जाता है। सब पैसे की माया है। गोरी दुल्हन काला दूल्हा घोड़ी सजे कैसे। बिका हुआ दूल्हा है खरीदी गई दुल्हन है। इनके मां-बाप व्यापारी है। आज तो मेरी भी दस्यु बनने की इच्छा हो रही है।"

"छोड़ो यार। हमारा मकसद इतनी गहरी रिसर्च की बातें करने का जरा भी नहीं है। फालतू की बातें करके क्यों अपना कीमती समय बरबाद कर रहे हो। हमारा रोज का यह एक घण्टा कीमती होता है ये तुम दोनों तो अच्छी तरह से जानते हो फिर भी फालतू बातें करते हो। हम यहां पर फालतू की बातें करके अपना बहुमूल्य समय खराब करने नहीं आये हैं और फिर यह समय तो हमारा सामूहिक मकसद प्रकट करता है। हमारा मकसद केवल गोरियों की

सुन्दरता का रसपान करना है न कि उस रसपान को फालतू की बातों में बेस्वाद करना, बेमतलब की टिप्पणियां करना। बेमतलब की टिप्पणियों के लिये हमारे पास ढ़ेरों विषय है और दिनभर का समय। जब जी में आये तभी करो लेकिन कृपा करके यह समय हमेशा एक ही विषय को समर्पित कर डालो ताकि (चांस मिस) अवसर गंवाने का पछतावा न रहे। सामने लगी हुई घड़ी देखो क्या समय दे रही है और समझने की कोशिश करो कि छह बजाती हुई सुईयां क्या समझाने की कोशिश कर रही है। ये कह रही है कि मित्रों तुम लोग अब जाओ, कल फिर आ जाना। यहां तो पल-पल सुन्दरियों का मेला लगा ही रहता है। कभी भी आकर देख लेना। बारह महीने यहां पर गोरियों का जमघट-सा लगा ही रहता है। गर्मियों में आइसक्रीम, ठण्डा, मैंगो शेक और सर्दियों में गर्मागर्म गाजर का हलवा, जलेबियां, कॉफी आदि कुछ-न-कुछ मिलता ही रहता है। जाओ, अब तुम्हे गाड़ी पुकार रही है। तुम्हें घर तक पंहुचाने के लिए बेताब है, तुम्हारे इंतजार में खड़ी है। गाड़ी में सफर करने वाले आकर्षक चेहरे तुम्हें चुम्बक की तरह खींच रहे है और बुला-बुलाकर कह रहे हैं कि आओ

दुर्याेधन रूपी खलनायकों हमारा जबरदस्ती दीदार करो, चीर हरण करने की योजना पर अमल करो, जाल बिछाने की कोशिश कम करो क्योंकि हम तो बिना जाल बिछाये ही फंसने को तैयार हैं और अब हमारे जाने का समय हो चुका है। मेरी मानो और तुरन्त स्टेशन की और कूच कर जाओ, गाड़ी छूट जाने का आदेश है।'' मेरी निगाह बराबर घड़ी की सुइयों पर थी। समय का सही ध्यान रखते हुए मैने ही कहा था। सुन्दरियों के जमघट निखरने के चक्कर में गाड़ी के प्रस्थान का समय हो रहा था लेकिन हममें से कोई भी जल्दी सरकने को तैयार नहीं था।

आपसी वार्तालाप में मगन हम तीनों स्टेशन जा रहे थे। मेरे कंधे पर रखे हुए संतोष के हाथ का दबाव अचानक बढ़ा। जब तक मैं कुछ पूछ पाता, समझ पाता वह बोला अपनी नौकरी की नीरसता को समझते हुए -

'' कहां बेकार में नौकरी में फस गये यारों ?

''दूसरे लोग तो पागल हैं जैसे यूं ही इसके पीछे दौड़ते-भागते रहते हैं रात-दिन। और एक तू है जिसे नौकरी से बिल्कुल भी मोहब्बत नहीं। तेरा जी

भर गया क्या ? कमाल है भाई।'' शायद संतोष की बात तारा समझ नहीं पाया था।

''नौकरी अच्छी तो लगती है लेकिन उससे ज्यादा नहीं। वो सामने वाला काम नौकरी से कहीं ज्यादा अच्छा है। काश ! हम भी वही सब कुछ करते। हमारी भी छोटी-सी खोखे जैसी दुकान होती। हम भी मनियारी वाले की तरह अदने से, छोटे-से दुकानदार होते। दुकान में दुनिया भर की, हर देश की, हर प्रान्त की और भी पारम्परिक रंग-बिरंगी चूड़ियां होती। हम भी संतूर साबुन वाले विज्ञापन वाली उन चूड़ियों वाली की तरह किसी सुन्दरी, किसी षोडशी को पूरे पांच सौ रूपये की रंग बिरंगी चूड़ियां पहनाने की जिद करते। हमारे हाथ में भी किसी खूबसूरत कन्या की कमसिन गोरी कलाई होती। पहले हम उसकी सुन्दरता का दीदार करते फिर प्यार से चूड़िया पहनाते और तुम अब कल्पना करो कि तंग चूड़ियां पहनाने के बहाने किसी का हाथ घण्टों थामे रखते, कच्ची चूड़ियां पहनाने और तोड़ने या नये नये आकर्षक डिजाइन दिखने के बहाने देर तक आंखों में आंखें डालकर निहारा करते, जानबूझ कर हाथों में हाथ रखकर सहलाते रहने के क्रम में सोचो कितना

मजा लेते या हम दर्जी ही होते, विशेषकर स्त्रियों के परिधानों के विशेषज्ञ। हमें सबका नाप-तौल पता होता। बाजार से सस्ती दरों पर सुन्दर-सुन्दर परिधान सी कर देने के बहाने महिलाओं को अक्सर लुभाते। दुकान में भीड़ जुटाते, लड़कियों को अनावश्यक बिठाकर रखते, नाप लेने में देरी के साथ-साथ टाल मटोल करते रहते। हमारा फीता कभी उनके सुडौल वक्ष पर, कभी कटि प्रदेश पर होता। कमर नापने के बहाने से हर उम्र की स्त्री का आलिंगन किया करते या फिर लिपस्टिक, बिंदिया, मेकअप का सामान, ब्रा और पैण्टी, रोल्ड गोल्ड के आभूषण, पांजेब, घुंघरू आदि, परिवार नियोजन के साधनों का व्यापार करते यानि कि ऐसा हर कोई भी काम करते जिसे हमारा काम, काम न होकर एक पवित्र धाम बनकर रह जाये जिसके दर्शन के लिए लड़कियां और महिलायें दर्शनार्थियों की तरह आती-जाती रहें, पूजा-अर्चना करती रहें। चौबीसों घंटे हमारा धाम सार्वजनिक स्थान बन जाये जिस पर कभी भी नीरसता न रह सके लेकिन हमारी कल्पनायें, हमारे सपने साकार होने से पहले ही ठीक उसी प्रकार बिखर जाते जिस प्रकार कि त्वचा से सही उम्र का पता न लगने के

कारण षोडशी को मां पुकारे जाने पर उस चूड़ियों वाली बुढ़िया की"। ठण्डी आह भरकर बोला था संतोष जिस पर पता नहीं किस सुन्दरी का जादू था।

"अगर हम नौकरी नहीं कर रहे होते तो शायद तू ये सब नहीं सोच पाता। नौकरी भी नहीं कर रहे होते या हम अप-डाउन नहीं कर रहे होते तो तू किसी भी हालत में इतनी दूर तक नहीं पहुंच पाता। लगता है कल्पनाओं में रहते-रहते, कल्पनायें करते-करते तू भी पागल हो जायेगा। विवाह क्यों नहीं करवा लेता फटाफट। सपने भी साकार कर ले।" मेरा सुझाव था।

"भैया विवाह करवाना अलग बात है और कल्पना करना, उसमें खो जाना दूसरी बात। और फिर तू ही बता दे कि मैं किस-किस लड़की को अपने सपनों की रानी बनाऊं, किस-किस से विवाह करवाऊं। यहां पर मिलेगी वो जिसे हम नहीं चाहते और कभी नहीं मिलेगी वो जिसे हम चाहते है। मन की हर मुराद दुनिया में किसी की भी पूरी नहीं होती और हर आदमी मेरी तरह की कल्पनाओं के संसार में ही डूबा रहता है। कभी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता, कभी जमीं तो कभी आसमां नहीं मिलता। समय ही बुद्वि को पलटकर रख देता है जिससे सब

मुरादें पूरी होती हुई नजर आती है। घर की दाल भी मुर्गी हो जाती है। विवाह एक ऐसी मुराद है जो पूरी हो जाये तो ठीक वरना बाद में ही मुराद, नामुराद हो जाती है। अब इस युग में तो हर किसी से विवाह नहीं करवा सकते। हम केवल सोच ही सकते है। हम भी अगर किसी रियासत के राजा होते तो शायद ऐसा हो सकता। समझ में नहीं आता कि हम विवाह किससे करवायें। उससे जिसे सामने वाले दुकानदार द्वारा रंग-बिरंगी चूड़ियां पहनाई जा रही थीं, उससे जिसके सुडौल वक्ष और कमर पर फीता रख के थोड़ी देर पहले जिसका नाप लिया जा रहा था, उससे जो थोड़ी देर पहले मारूति कार में आई थी, उससे जो बार में बैठी हुई लापरवाही से जुल्फों को झटकती हुई लिम्का पी रही थी, उससे जिसके साथ वाली सीट पर हम सिनेमा में बैठे थे, उससे जो गोल-गप्पे स्वाद ले-लेकर खा रही थी, उससे जो हमसे सम्पर्क बनाने के चक्कर में है, उससे जिसकी तस्वीरें हर स्टूडियों की शोभा बढ़ाती हैं या उससे जिसे हम रोज-रोज गाड़ी में आते-जाते तलाशा करते है, निहारते है, आवाज देते हैं या उससे जिसके मिलने की हमने अभी तक कल्पना ही नहीं की है या उससे जिससे

हमने मुलाकात ही नहीं की या उससे जिसे हमने आज तक नहीं देखा फिर भी जिसके मिलने की उम्मीद करते रहते हैं, फिर जो हमारी धर्मपत्नी बनने वाली होगी, या जिससे हमारी कुण्डली मिलेगी विवाह का योग बनेगा। कुछ भी नहीं कह सकता।" एक-दूसरे की सांसरिक और अति संवेदनशील दार्शनिकों की-सी बातों से हम काफी (सीरियस) गम्भीर हो चुके थे, हमारा पूरा विषय ही खिचड़ी हो चुका था, दाल-चावल बिल्कुल ही मिल गये थे।

"इसका मतलब है तू तो वास्तव में पागल ही है जो इस तरह से दीवानों की तरह सोचता है। बात करके फिर छोड़ देना अलग बात है और हमेशा ही उसी के बारे में सोचना और सोचते ही रहना अलग बात। उन सबमें से तुझे कोई भी नहीं मिलने वाली और न ही मिलेगी। ज्यादा मत सोचा कर और उम्मीद भी मत रख लेना वरना तू सचमुच में पागल हो जायेगा, पागलखाने भेजने लायक हो जायेगा।" अबकी बार में बोला था। हम तीनों में से हर आदमी एकाध बार बोल ही पड़ता था।

"मेरी कौन-सी जान ही निकली जा रही है उसके पागलपन के पीछे। न मिले तो न सही देखने

और सोचने में तो कोई भी बुराई नहीं है। सोचकर देखना, देखकर खुश होना, खुश होकर प्रशंसा करना और खुदा की प्रशंसा करके कई दिन तक अक्स इन आंखो में रखना, नई या अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर देखकर, पहले वाली को भुला देना ही हमारा काम है। पागल होकर उसके पीछे मरना नहीं। जब वो हमें घास नहीं डालती तो हम भी क्यों मुंह मारें बिना घास के। घास के लिये भूख दिखायें। बिना मतलब हम भी मुंह मारकर पंगा क्यों मोल लेवें भला। हम मरने से तो रहे उसके पीछे। हम इधर खुश वो उधर खुश रहे।'' तारा ने कहा था।

''कुंआरो को तो बस ख्वाब ही देखते रहना चाहिए, कल्पना करते ही रहना चाहिए जब तक कि ख्वाब हकीकत में न बदल जाये, शादीशुदा होकर बाल-बच्चेदार न हो जायें। शादी से पहले जो कुछ भी करो, कहीं भी मुंह मारो। सब कुछ जायज है लेकिन शादी के बाद में तो एक ही खूंटे पर एक के साथ बंधकर रहना होगा, एक ही बर्तन में खाना पड़ेगा। हमेशा एक ही बात दिल में रहेगी कि काश दुनिया की सारी लड़कियां मेरी पत्नियां होती। तमाम योग्यताओं की मल्लिकायें। कोई शारीरिक रूप से

सुन्दर होती तो कोई मानसिक रूप से। कोई गुणों की खान होती तो कोई दौलत की। किसी के पास सुन्दरता की दौलत होती तो किसी के पास डिग्री के रूप में योग्यता की। कोई पाकशास्त्र में लाजबाव होती तो कोई (टाक शास्त्र) बातचीत में। अर्थात् जिस किसी की भी योग्यता की आवश्यकता होती वही, उसी योग्यता को रखने वाली पत्नी सामने आ जाती ठीक पांच पांडवों की तरह। जैसे कि वे अकेली द्रौपदी के पांच पति थे। सब किसी-न-किसी प्रकार की योग्यता के माहिर। हमें भी ऐसा ही पत्नियां मिल जानी चाहिए। सब हमारी तकदीर पर जल उठते। आज हम केवल कल्पना करते हैं कि कोई भी, कैसी भी मिल जाये बस। कल कहा करेंगे हमारे पास भी ऐसी होती, वैसी होती, फलां जैसी होती। फिल्मी तारिकाओं जैसी होती। परसों लोगों की तकदीर पर जला करेंगे जब अपने ही घर की मुर्गी दाल के बराबर बेस्वाद हो जायेगी, दूसरे की थाली का लड्डू अपेक्षाकृत बड़ा व स्वादिष्ट लगने लगेगा और जब यह लगने लगेगा कि अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत तो सब कुछ खाली लगने लगेगा, शराब की खाली हुई बोतल की तरह तब

नानक दुखिया सब संसार को मानना ही पड़ेगा। यह समझ लेना होगा कि यह संसार या यह रिश्ता चार दिन की चांदनी और फिर हमेशा ही अंधेरी रातों के सिवा कुछ भी नहीं है जो कुछ भी है बन्द बोतल है नशे से भरपूर। अक्ल पर पड़ा हुआ पर्दा है जो शादी से पहले अगर उतर जाये तो ठीक वरना पर्दा रोज-रोज बढ़ता ही जाता है।'' हम तीनों बारी-बारी से एक-दूसरे के साथ इसी वार्तालाप का मजा ले रहे थे और चाहते थे कि शराब का नशा कभी उतरे नहीं और बोतल कभी खत्म न हो लेकिन बोतल की भी सीमा होती है और पीने वाले की हिम्मत। या फिर शराबी की समझ, चाहे तो उसे वह उसे धीरे-धीरे पी ले या फिर एक ही सांस में। वह चाहे देशी हो या अंग्रेजी।

''हम तो भैया जला ही करेंगे कभी अपनी तकदीर पर कभी लोगों की अच्छी तकदीर पर। तकदीर और लड़कियांे में हमेशा उल्टा ही सम्बन्ध होता है। तभी तो जलना पड़ता है। कभी आग बनकर कभी कोयला बनकर। जिसकी पत्नी अच्छी होती है उसकी तकदीर बेकार और जिसकी पत्नी बेकार होती है उसकी तकदीर अच्छी। अनेक लड़कियों को पाने

की ये चाहत, उनकी कल्पना की मृगतृष्णा हमें पागल किये जा रही हैं। समझ में नहीं आता कि इस तरह एकतरफा चाहत से हम पिण्ड कैसे छुड़ायें ? ऐसा क्या कर देवें कि मृगमृष्णा हमें आजाद कर दे अपने शिकंजे से। हमारा दिल भर जाये।''

''जब तृष्णा खत्म हो जाती है तो मृग अपने आप ही भागना छोड़ देता है। इसका मतलब है कि एक बार प्यास बुझने के बाद शान्त हो जाती है, कुछ देर तक पानी की जरूरत नहीं रहती। अपने दिल को मृग बनाने की बजाय अपनी चाहत की प्यास को ही खत्म कर डालो, एक से ही संतुष्टि कर लो। दूसरी पाने की बात को भूल जाओ।''

''ये मृगतृष्णा भी बहुत भयानक चीज है। मरते दम तक पीछा नहीं छोडेगी दोस्त। ये एक ऐसी प्यास है जो एक बार बुझने के बाद दुबारा फिर सिर उठा लेती है, फिर से लगने लग जाती है, उम्र भर भगाती रहती है। ये पानी नहीं देखती या पानी का स्वाद या मात्रा नहीं देखती बल्कि पानी के बर्तन को देखती है। प्यास पानी से बुझती है बर्तन से नहीं। मैं, तुम, वह या सभी अन्त तक दूसरी के चक्कर में, प्राप्ति की कोशिश में, पाने की लालसा में आगे-पीछे दौड़तें

ही रहेंगें। कांच के गिलास को छोड़कर स्टील के गिलास को, स्टील के गिलास को छोड़कर चांदी या चांदी को छोड़कर सोने के गिलास को पाने का चक्कर चलाते रहेंगे। बस दौड़ते-दौड़ते मर-खप जायेंगे। ये मृगतृष्णा कभी नहीं मरेगी। ये बार-बार उठेगी और हमें हर जगह मुंह चिढ़ायेगी। मारीच रूपी मृग दौड़ता ही रहेगा कभी दो हाथ आगे कभी दो कोस आगे, पर हाथ कभी नहीं आयेगा। ये दूरी कम-ज्यादा हो सकती है मगर खत्म कभी नहीं होगी। उसे पाने के चक्कर में पीछा करते-करते हम भी भगवान श्री रामचन्द्रजी की तरह सीता से भी हाथ धो बैठेंगे।'' तारा दार्शनिकता पर उतर आया था।

''अच्छा छोड़ो यार। तू स्टेशन जाकर जगह देख हम दोनों अभी आते है।'' संतोष को सीट रोककर रखने का आदेश देकर हम दोनों सिगरेट लेने भागे।

''बाप रे। गाड़ी का समय हो गया है। सिगरेट लेकर जल्दी से आना वरना गाड़ी मृगतृष्णा हो जायेगी और हम सभी-के-सभी राम। इंजिन भागने को तैयार है। मुझे (व्हिसिल) सीटी सुनाई देने लगी है। गाड़ी चली गई तो तुम यहीं बैठे-बैठे सिगरेट पी-पीकर छल्ले उड़ाते रहना समझे।'' संतोष घबराकर

बोला था। उसका ध्यान सिगरेट की तरफ कम और गाड़ी की तरफ ज्यादा था।

''तू फटाफट जाकर सीट देख। हम ये गये और ये आये।'' तारा चुटकी बजा कर बोला। संतोष और मैं, दोनों स्टेशन की ओर भागे क्योंकि गाड़ी के चलने का समय हो चुका था, चहल-पहल बढ़ गई थी, टोकन जा चुका था और इंजिन धुएं के छल्ले बनाने को तैयार हो रहा था।

जब तक हम दोनों स्टेशन पहुंच पाते गाड़ी के प्रस्थान की घोषणा हो चुकी थी। चालक (व्हिसिल) सीटी बजाकर गार्ड को झण्डी देने को कह रहा था। वह गार्ड की हरी झण्डी देखने को बेकरार था। देखते-देखते गार्ड ने भी हरी झण्डी दिखाकर चालक को चलने का संकेत दे दिया था। गाड़ी ने धीमे-धीमे सरकना शुरू किया ही था कि दूर किसी कम्पार्टमेण्ट की खिड़की में से हाथ बाहर निकालकर संतोष हमें बुला रहा था शायद बैठने लायक जगह बन चुकी थी। हमारा ध्यान स्टेशन पर छोड़ने आये लोगों की गतिविधियों पर था जिन्होंने गाड़ी प्रस्थान के साथ-साथ डिब्बों के साथ-साथ चलना प्रारम्भ कर दिया था। कोई यात्रा में बरती जाने वाली सावधानियों को

समझा रहा था तो कोई जाते ही खत लिखने का आदेश दे रहा था। लोग-बाग डिब्बों में चढ़ने-उतरने शुरू हो गये थे, कुछ-एक दरवाजों में खड़े हुए थे या बाहर हत्था पकड़े लटक रहे थे शरारत के तौर पर। कुछ यूं ही हाथ हिला-हिलाकर विदाई दे रहे थे, लोग समझ नहीं पा रहे थे कि वास्तव में किसे कौन-कौन विदाई दे रहा था।

"देखें चलकर आज कौन-सी मिस 9712 से सामना होता है हमारा। संतोष ने भी किसी बोर्ड के सदस्य की तरह सिलैक्शन करने के लिहाज से जगह का जुगाड़ नहीं किया होगा जहां पर आज के यात्रियों मे से सबसे खूबसूरत और कमसिन लड़की/महिला बैठी होगी। परिणामस्वरूप वहीं लड़की/महिला ही आज की मिस/मिसेज 9712 होगी। हमारे द्वारा दी जाने वाली उपाधि के बारे में चौथा कोई भी नहीं जानता। बस तीन ही इस सिलैक्शन बोर्ड के चयनाधिकारी हैं। इस पिक्चराइजेशन के निर्माता निर्देशक।" जाने क्या सोचते-सोचते प्रवीण मुझे बताने लगा था।

"ये मिस या मिसेज तो ठीक है। परन्तु 9712 शायद हमारी गाड़ी का नम्बर है।" प्रवीण फिर अपने आप ही बोल पड़ा था।

"कमाल है यार। तू खुद ही सवाल करता है खुद ही जवाब भी देता है। मुझे काहे को घसीटता है फालतू में। तुझे अपनी उस गाड़ी का नम्बर नहीं पता जिससे अप डाउन करते हुए हमें बरसों बीत गये। हमारी जयपुर-श्रीगंगानगर गाड़ी का नम्बर है। सुबह जब हम घर से जाते हैं तो इसका नम्बर होता है 9711 और जब हम वापस जाते हैं तब होता है 9712, तुम्हें तो इसके बारे में पता होना चाहिए। कोई-न-कोई पूछ ही लेता है।" उसकी जिज्ञासा शान्त करने के साथ-साथ उसे आश्चर्य हुआ था मेरी बात पर। तब तक गाड़ी की गति कुछ बढ़ चुकी थी। शहर का आबादी वाला क्षेत्र काफी पीछे छूट चुका था। यात्री अपनी-अपनी सीटों पर बैठने लग गये थे। कण्डकटर उन्हें टिकिट नंबर देख-देखकर सीट नम्बर बता रहा था। फिर भी कुछ यात्री गैलरी में खड़े हुए थे जिन्हें थोड़ा-सा सफर करना था, आसपास ही उतरना था, जिनकी यात्रा का समय कम था या

किसी को दूसरे यात्रियों की सुविधा का ध्यान रखते हुए धुम्रपान करना था।

यात्रियों की भीड़ में से जगह बनाते-बनाते, आगे बढ़ते हुए जब तक हम संतोष के पास पहुंचते, हमारे कानों में संतोष के किसी महिला के साथ मधुर वार्तालाप के कुछ अंश पड़े। पहले हमने केवल संदेह समझा। लेकिन जब कान लगाकर बातचीत सुनी तो वहीं संदेह विश्वास में तुरन्त बदल गया। कुछ-कुछ समझ में आने लगा था। मामला भी कुछ उल्टा-सुल्टा ही लगा था उन दोनों की बातचीत से-

"तुम्हारे घर में सब कैसे हैं जैसे कि अंकल-आंटी, गोलू और मोलू।"

"सब मजे में हैं एकदम बढ़िया हाल में। टनाटन हैं। मजे से दिन कट रहे हैं।"

"कौन-सी कक्षा की परीक्षा दी है इस साल ?"

"बी0 ए0 का।"

"परीक्षा परिणाम कब तक आ जायेगा ?"

"यही कोई तीन-चार माह में ?"

"आगे क्या इरादा है तुम्हारा ?"

"किसी (कम्पीटिशन) प्रतियोगिता में बैठने की इच्छा है मेरी।"

"किस तरह के, हम भी तो जाने जरा।"
"जैसे कि बी. एड., बैंक कम्पीटिशन, आर. पी. एस. सी. के।"
"तैयारी कैसी चल रही है ?"
"बस ठीक ही है, ज्यादा अच्छी नहीं है।"
"खाली समय कैसे निकलता है, बोरियत तो नहीं होती तुम्हें ?"
"कभी पुस्तकें पढ़कर, कभी रेडियों सुनकर, कभी दूरदर्शन के कार्यक्रम देखकर।"
"इन सबमें अच्छा क्या लगता है ?"
"पुस्तकें पढ़ना।"
"कैसी पुस्तकें पढ़ना-फिल्मी या साहित्यिक ?"
"कभी-कभी दोनों। लेकिन ज्यादातर तो साहित्यिक ही।"

अपनी आदतों और मनोविज्ञान को देखते हुए प्रवीण ने मुझसे कहा-"ये पट्ठा तो बड़ा ही तीसमारखां निकला यार।" अप-डाउन करते हुए हमें कई साल बीत गये, हमने आज तक किसी भी लड़की को पटाने की कोशिश नहीं की, न ही हम कभी कामयाब हो सके। शायद हममें लड़की पटाने की योग्यता ही न हो। हमें भी कहीं-न-कहीं से लड़की

पटाने का गुर सीखना पड़ेगा। लड़की पटाने वाले किसी एक्सपर्ट को गुरू धारण करना पड़ेगा। गुरू-दक्षिणा देनी होगी। किसी ऐसे ही विद्यालय में दाखिला लेना ही होगा। प्रशिक्षण लेना होगा और फिर चेला बनना होगा। इस कला को आगे बढ़ाने का मौका, मार्ग प्रशस्त करना होगा, सही रास्ता दिखाना होगा। कार्यशाला का आयोजन करना होगा।'' हमें आपस में बातचीत करते हुए देखकर संतोष भी तलाश करते हुए वहां तक आ पहुंचा, पास आकर रूका और बोला -

''तुम दोनों यहां पर खड़े हुए क्या कर रहे हो यार ? मैंने तुम्हें इशारा भी किया था। वहां पर दूसरे यात्री जगह के लिये झगड़ा करने पर उतार हो रहे है। वे बैठने के लिये अड़े हुए हैं। मैं वहां उन्हें कब से समझाने की कोशिश कर रहा हूं कि तुम दोनों आने वाले हो। फिर भी नहीं मान रहे वे लोग। अपनी ही जिद पर अड़े हुए हैं। कह रहें हैं कि जब तुम दोनों नहीं आ जाते मैं उन्हें बैठ जाने दूं तुम दोनों के आते ही वे उठ जायेंगे। जगह खाली कर देंगे। चलो यार मैं कितनी देर से तुम्हार इंतजार कर रहा हूं सीट रोककर सीट के लिये झगड़ा भी कर रहा हूं।''

"हम यहीं पर ठीक है यार। तुझे डिस्टर्ब नहीं करना चाहते थे।" प्रवीण ने पहले जैसी बात करते हुए कहा था।

"क्या मतलब ? मैं उन्हें बिठा दूं जो वहां पर झगड़ा कर रहे हैं।" संतोष फिर बोला उसकी बात को न समझते हुए।

"उन्हें ही बिठा ले यार। उनका झगड़ा खत्म कर। हम यहीं पर खड़े-खड़े सफर कर लेंगे। हमने वहां पर आना ठीक नहीं समझा। तू वहां पर बैठ कर मौके का फायदा उठा। मीठी-मीठी बातें कर। अपना समय मजे से पास कर। गंगा स्नान कर।"

"तुम आखिर कहना क्या चाहते हो यार ?" संतोष कुछ भी समझ नहीं पा रहा था।

"मैं यह कहना चाहता हूं साले कि तूने तो कमाल ही कर डाला। सिर्फ एक महीने में ही तू हमसे भी आगे निकल गया। हमारा भी उस्ताद हो गया। एक बात बता, तूने कहां से शिक्षा ली ? हमें भी उस विद्यालय का रास्ता दिखा।"

"क्या कमाल हो गया यार। कौन सा उस्ताद, कौन-सी शिक्षा। उस्ताद की बात मेरी तो समझ में नहीं आ रही यार। डिटेल्ड बात करो न।"

"तेरे पैर छूकर हम तुझे अपना गुरू बनाने का प्रण करते हैं। हमें भी कोई मंत्र दे। शायद हम भी कभी कामयाब हो जायें। हम होगें कामयाब एक दिन। हां, मन में है विश्वास। काम नहीं कोई मुश्किल अगर ठान लीजिये सिर्फ एक बार।"

"तुम क्या पहेलियां-सी बुझा रहे हो यार। तुम्हारी ये पहेलियां तो मेरी समझ से बिल्कुल ही बाहर की बात है। कृपा करके इन सबका उत्तर मेरे दिमाग में डालने का कष्ट करें ताकि मैं भी कुछ जान सकूं कि तुम किस-किस मामले में उस्ताद बनना चाहते हो।"

"क्या लड़की पटाई है तूने गुरू। पटाख है पटाखा। हमारा तो दिल ही जल रहा है। विस्फोट हो रहा है दिमाग में। अरमान मचल रहे हैं हमारे, तेरे सामने वाली सीट पर बैठी हुई फुलझड़ी उर्फ मिस 9712 को देखकर। क्या चीज है।"

इससे पहले कि प्रवीण अपनी बात पूरी करके कुछ और कहने की कोशिश करपाता, संतोष का एक जोरदार हाथ उसके गाल पर पड़ा यह कहते हुए, इस वाक्य के साथ कि-

"हरामजादे मुंह संभालकर बात कर। जुबान खींच लूंगा अगर एक शब्द भी और कहा तो उसके बारे में। मेरी चचेरी बहन है वो।"

हम तीनों चुप थे ठीक वैसे ही सिर को झुकाये जैसे कि तूफान के बाद होता है।

(मधुमती के मई 1992 के राजस्थान युवा रचनाकार विशेषंाक में प्रकाशित)

6. सांझी बट्ट

गांव का नाम मोहम्मद पुरिया।

सरदार हरनाम सिंह के घर में काफी चहल पहल थी। गांव को आबाद हुए कितना समय हुआ है यह तो पक्के तौर पर कहा नहीं जा सकता परन्तु इस बात को पूरे विश्वास के साथ कहना पड़ता है कि इस गांव की नींव ही सरदार हरनाम सिंह के पूर्वजों द्वारा ही रखी गयी है। उसका परिवार गांव का प्रतिष्ठित कुनबा था। जब उसके पूर्वजों ने इस स्थान को अपना ठिकाना बनाया था तब, उस समय वहां पर केवल दूर-दूर तक रेत के टीले-ही-टीले नजर आते थे, जमीन बिल्कुल ही बारानी थी, पानी का कोसों तक नामोंनिशान दिखाई नहीं देता था, हर सांस के साथ बालू-रेत शरीर में प्रविष्ट हो जाती थी और शरीर भी जैसे रेत का टीला होकर ही रह जाया करता था, वह जगह किस प्रकार से आबाद हुई या कितनी बड़ी कोशिशों के बाद आबाद कर अस्तित्व में लाई गई यह बात केवल हरनाम सिंह या उसका अकेला परिवार ही जानता है। केवल वे लोग ही जानते हैं कि जब उन्होनें सर्वप्रथम उस स्थान पर डेरा लगाया था, ढ़ाणी की तरह उजड़े प्रदेश में कच्चे

मकान खड़े किये थे, हर वक्त लुटेरों का भय रहता था, जो किसी भी समय हल्ला बोल दिया करते थे। न रात देखते थे और न ही दिन। सामान की उन्हें कोई परवाह नहीं होती थी। जो भी मिलता लूटकर ले जाते थे। चाहे वो ढोर-डंगर हों, खाने-पीने का सामान हो या फिर औरतें। मर्दों को गुलाम बना लिया करते थे और औरतों को दासियां या वेश्याएं। अपने इसी सामान की सुरक्षा के लिये उनकी रातों की नींद और दिन का चैन हराम हो जाया करता था। वे कभी भी किसी भी समय मुकाबले के लिये तैयार रहते थे। मुकाबला करना उनकी मजबूरी के साथ-साथ आवश्यकता भी थी वरना उन्हें कोई भी आजादी से, आराम से जीनें नहीं देता था। सारी उम्र परेशान करता। लुटेरों से दो-दो हाथ करते-करते अपने माल और असबाब की रक्षा की और कालान्तर में आबाद होते गये। परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ी। कच्चे-पक्के मकान बने और होते-होते, बनते-बनते, बिगड़ते-बिगड़ते, वह स्थान लगभग 200 घरों की आबादी का गांव बना और नक्शों में आया, आबादी बढ़ी, सड़कों से जुड़ा, नहरें आयीं, पानी आया, बिजली आयी और बिजली आने के साथ-साथ आधुनिक

सुविधाओं की आवश्यकता महसूस हुई और टेलीफोन आया, टेलीविजन आया, रेडियों आया, कूलर आया, पंखा आया। इन सबके साथ-साथ ही आयी राजनीति। वैल्फेयर की नहीं बल्कि फेअरवेल की। आने वाले हर पंच या सरपंच ने (लीडरों) नेताओं को जी भर गाली दी। उनकी ऐसी जड़ काटी के वे कभी फिर से कामयाब नहीं हो सके। उनकी हर बात में रोड़ा अटकाया, हर नीति को बुरा बताया। शुरू किये हुए हर काम को बन्द ही नहीं किया बल्कि हर उस काम को जिसे भी प्रारम्भ करने की घोषणा की। समाज के खिलाफ बताया और खुद को जनता का सेवक बनाने की भरपूर कोशिश की। ऐसी कूटनीति की राजनीति की कि हर आदमी एक दूसरे का दुश्मन, जान का प्यासा और आंख में कांटे की तरह खटकने लगा, खून करने और खून की होली खेलने को हरदम तैयार रहने लगा। अवसर की तलाश में हर चूहा भी शेर हो गया अपनी औकात भूलकर राजनीति में जा घुसा। इन चूहों ने आपसी अच्छे रिश्तों के जाल को इतनी ज्यादा बुरी तरह कुतरा कि अब सिवाय जाल के, अलग-अलग धागों के टुकड़े ही नजर आते हैं जिन्हें फिर से बुनना चाहो तो इतना मुश्किल है कि

धागांे के सिरे ही दिखाई नहीं देते, कोशिश करो तो भी वे राजनीतिक दलों की तरह एक-दूसरे से मिल चुके हैं। हर आदमी घटिया राजनीति का शिकार हो गया है और पिंजरे में बंद चूहे की तरह बेबस है, लीडर बिल्लियों की तरह उन्हें झपटने की ताक में है कि कब पिंजरा खुले ? कब चूहा पकड़ें ? इस समय गांव में हर धर्म, हर जाति के लोग रह रहे हैं जो सबसे पहले एक-दूसरे के रक्षक थे, भाई-भाई थे, मेल-मिलाप रखते थे। दस साल पहले सब एक थे घी-खिचड़ी की तरह।

गांव के जिस जंमीदार के साथ भी उसका धरमेला था उनमें से शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा जिसके घर से एक या दो सदस्य वहां हरनाम सिंह के घर में उपस्थित नहीं थे। उपस्थित जन समुदाय में बच्चों का बहुमत था। मई का महीना था, मौसम दिन-व-दिन गर्म होता जा रहा था। हवा इतनी गर्म थी कि प्रातः दस बजे ही लू की तरह बहने लगती थी और आधे दिन का आभास होता था। अधिकांश किसान खेतों पर गये हुए थे, उनकी पत्नियां सिर पर लस्सी की हाण्डी रखे हुए, कपड़े में प्याज की चटनी, आम के अचार के साथ तंदूर की

मोटी-मोटी रोटियां तथा दोपहर की चाय के लिये पूड़ियों में चाय की मोटी-मोटी पत्ती, गुड़-चीनी व देशी दारू की बोतलों में दूध लेकर खेतों पर काम कर रहे पतियों और सीरियों (श्रमिक) के लिये खाना लेकर जा रही थीं। रोटी पहुंचाकर हर गृहिणी वापस जल्दी लौट जाना चाहती थी और जो भी तुरन्त वापस आया, सरदार साहब के यहां उपस्थित था, पूजा-पाठ के कार्यक्रम में शामिल होने की कोशिश कर रहा था।

अब हरनाम सिंह का परिवार गांव का एक मात्र सिख परिवार ही रह गया था क्योंकि जैसे-तैसे समय ने करवट बदली, स्कूल खुले, गांव वालो ने लिखना-पढ़ना शुरू किया। दिमाग बदले, रिश्ते बदले और जमीन-जायदाद के रोज-रोज के बढ़ते आपसी झगड़ों के कारण बाकी सदस्य या तो बाहर नौकरी करने चले गये या फिर अपना-अपना हिस्सा बेचकर गांव से बाहर चले गये, बाकी सब खुशी या गमी के सब अवसरों पर उन सबका सम्बन्ध बदस्तूर जारी रहा। बस उन्हें एक साथ मिलकर रहना ही अखरता था और साथ ही गांव वालों की कूटनीति का दुःप्रभाव भी था कि उन्हें अलग-अलग होना ही पड़ा। वे संगठन

की शक्ति या एकता में ही बल की नीति को बिसारकर भूल गये थे। उसके कच्चे घर में, ईंट-सीमेण्ट की पक्की सजी हुई बैठक में टेलीविजन लगा हुआ था। टेलीविजन के साथ-साथ बिजली का रेडियों भी चल रहा था। बैठक में टेलीविजन और रेडियो के साथ-साथ बच्चों का भी हल्ला-गुल्ला था। उनके द्वारा किये जा रहे शोर के कारण बार-बार बुजुर्गों को डांट मारनी पड़ती थी। मगर बच्चे कहां चुप होने वाले थे। एक बार डांट खाकर फिर से शोर मचाने लग जाते थे।

पांचवे पातशाह श्री गुरू अर्जुनदेवजी का शहीदी दिवस श्रद्वापूर्वक मनाया जा रहा था। देश में जगह-जगह विभिन्न गुरूद्वारों में आयोजित अखण्ड व साधारण पाठ की समाप्ति, अरदास और बाहर से पधारे हुए विद्वानों के भाषणों और कीर्तन आदि का प्रसारण दूरदर्शन और आकाशवाणी से साथ-साथ किया जा रहा था। बैठक में चारों और दसों गुरूओं के कलेण्डर लगे हुए थे, कलेण्डरों पर फूल-मालायें चढ़ाई गई थी। तमाम उपस्थित लोग आंखें मूंदे, हाथ जोड़कर खड़े हुए अरदास का पाठ कर रहे थे। अरदास की जा रही थी। एक तरफ मेज पर सफेद रूमाल से

ढ़की हुई परात रखी हुई थी जिसमें से कड़ाह प्रसाद की भीनी-भीनी खुखबू फैल रही थी, परात में से भाप उठती हुई दिखाई दे रही थी। तमाम बच्चे कभी ललचाई निगाह से टेलीविजन पर की जा रही अरदास की तरफ, कभी प्रसाद की परात की तरफ, कभी हाथ में छोटी कृपाण थामे, अरदास में लीन हाकमसिंह की तरफ बार-बार देख रहे थे। उनमें प्रसाद खाने की लालसा इतनी तीव्र हो उठी थी कि उनसे अरदास के समाप्त होने तक का इन्तजार करना अति मुश्किल काम लग रहा था। हाथों में प्रसाद लेने के लिये कटोरियां, चेहरों पर प्रसाद खाने की लम्बी प्रतीक्षा, सूखे होंठो पर जीभ फेर रही थी जैसे कि वह जीभ न होकर प्रसाद हो। कच्ची लस्सी पीने की उत्सुकता स्पष्ट झलक रही थी। काफी देर तक प्रतीक्षा करने के बावजूद जब देर तक प्रसाद मिलने के आसार नजर नहीं आये, मिलने के बाद खाने की उम्मीद नहीं रही तो हाकमसिंह का पुत्र तेजा हरनाम सिंह का कुर्ता खींच-खींचकर बोलने लगा-

"बाबा।"

वह कुर्ता खींचने की कोशिश में बार-बार नाकाम रहने के बाद ही बोला था।

''सी-सी।'' हरनाम सिंह ने मुंह अंगुली रखकर उसे अरदास की तरफ मुखातिब करना चाहा था।

''बाबा।'' तेजा पुनः मचलकर बोला, वह कुर्ता भी खींच लेता था।

''चुप तेजे पुत्तर। शोर नहीं करते। अरदास हो रही है। ग्रंथी कान काट लेगा।'' हरनामसिंह तेजे को टेलीविजन के ग्रंथी की कृपाण का डरावा देते हुए बोला-

''बाबा। प्रसाद कब मिलेगा ? अरदास कब खत्म होगी ? तेजा परात की तरफ देखकर पुनः मचलने लगा।

''फिर शोर। चुप हो जा तेजे पुत्तर। प्रसाद तभी ही मिलेगा जब अरदास खत्म होगी। ग्रंथी गुरूवाणी का वाक ले लेगा।'' हरनाम सिंह ने उसे फिर समझाने की कोशिश की।

''वाक कब लेगा ? मुझे जल्दी से प्रसाद दिलवाओ न बाबा। मुझे बहुत देर से तेज भूख लग रही है। मुझे तो अभी प्रसाद दिला दो। मैं नहीं मानता बस।'' तेजा मचलता ही जा रहा था।

''पुत्तर इन्तजार कर जरा। अरदास तो हो जाने दे न। तू थोड़ा सब्र और कर। थोड़ी देर और रूक

जा, अरदास खत्म हो, ग्रंथी अपने आप तुझे प्रसाद दे देगा। फिर जितना मर्जी खा लेना।'' हरनाम सिंह के साथ-साथ बाकी सब भी डिस्टर्ब होने लगे थे। उनका ध्यान उधर से हटकर इधर हो रहा था।

''बाबा। प्रसाद दिलवा दे ना।'' अब तेजे के सब्र का बांध टूटने लगा था। उसकी आंखों में से आंसू छलकने लगे थे, बेकरारी बढ़ रही थी और वह रोने लगा था।

''ये ले पुत्तर अठन्नी। जा तू भागकर अपने पास वाली हट्टी से चीज ले आ। चीज खाकर बाद में प्रसाद खा लेना।'' हरनाम सिंह ने कुर्ते की जेब में से अठन्नी निकाल कर तेजे को दी और किसी दूसरे बच्चे के साथ हट्टी पर भेज दिया। वह खुशी-खुशी चिल्लाता और दौड़ता हुआ चीज लेने हट्टी की तरफ रवाना हो गया।

तेजे को समझाते-समझाते अरदास पूर्ण हो चुकी थी। बाकी श्रद्वालुओं का ध्यान भी अरदास से हटकर तेजे और हरनाम सिंह के वार्तालाप की ओर हो चुका था। अरदास खत्म होते ही ग्रंथी ने पवित्र ग्रंथ साहब में से पन्ने खोलकर पवित्र वाक लिया, संगत को सुनाया और उस पर अमल करने की

प्रार्थना की जैसे कि गुरू ग्रंथ साहब एक अलग धार्मिक पुस्तक मात्र न होकर दुनिया भर के पीर, फकीरों की पवित्र व आध्यात्मिक वाणी का संग्रह है और दशम गुरू गोविन्द सिंह जी के बाद ग्यारहवां गुरू है। इस युग में किसी भी देहधारी गुरू को मानने की अपेक्षा गुरू ग्रंथ साहब को ही गुरू मानने की आज्ञा दी गई है साथ ही उनके बारे में कहा भी गया है कि -

आज्ञा भई अकाल की तबहु चलायो पंथ,
सब सिक्खन को हुक्म है गुरू मानयो ग्रंथ।
गुरू ग्रंथजी मानयो प्रकट गुरां की देह,
जो प्रभु को मिलबो चहै खोज शबद में लेह।
राज करेगा खालसा आकी रहे न कोई,
ख्वार होए सब मिलेंगे बचे शरण जो कोई।
खण्डा जाके हाथ में कलगी सोहैंे सीस,
जो हमरी रखियाकरे गुरू कलगीधर जगदीस।
वाहेगुरू नाम जहाज है चढ़े सो उतरे पार,
जो श्रद्वा कर सेम दे नानक पार उतार।

अथवा

अब्बल अल्लाह नूर उपाइया कुदरत के सब बन्दे,
एक नूर ते सब जग उपजिया कौन भले कौन मन्दे।

सन्त कबीर ने सारी सृष्टि को ही एक परमात्मा की सन्तान माना है और सबमें एक ही खुदा का नूर देखा है उसकी नजर में कोई हिन्दू नहीं, कोई मुस्लिम नहीं। सब एक ही पिता कि पुत्र हैं आदि-आदि।

उद्घोषकों की दर्शकों, श्रोताओं को स्टूडियों में वापस लिये चलने की घोषणा के साथ ही टेलीविजन और रेडियो बन्द कर दिये गये। हाकम सिंह द्वारा प्रसाद में कृपाण फिराकर, पांच पियारों का हिस्सा अलग कर फिर मिलाकर कड़ाह प्रसाद का वितरण किया गया। उपस्थिति संगत ने प्रसाद छका, कच्ची लस्सी घी और खुशी-खुशी अपने-अपने घरों को प्रस्थान किये। थोड़ी देर पहले जहां उसका घर शादी-ब्याह वाले घरों की तरह चहक रहा था वही अब सुनसान हो गया था और दोपहर के सन्नाटे में कबूतरों की गुटर गूं सुनाई देने लगी थी।

हरनाम सिंह के गांव में आज तक गुरूद्वारा नहीं बन पाया था परन्तु उसके घर में ही पवित्र गुरू ग्रंथ साहब का प्रकाश था जिसमें से वह सुबह श्री जपुजी साहब, सायंकाल में रहरास, कीर्तन सोहिला आदि का पाठ कर लिया करता था। कीर्तन तो

समय≤ पर चलता ही रहता था। प्रायः जब कभी भी धार्मिक अवसरों पर प्रथम पातशाह श्री गुरूनानक देवजी, नोवें, गुरू श्री तेग बहादुर जी और दशम गुरू श्री गोविन्द सिंहजी के जन्मोत्सव, गुरू तेग बहादुर हिन्द की चादर और पंचम पातशाह श्री गुरू अर्जुन देव जी के शहीदी दिवसों पर रेडियो/टेलीविजन द्वारा विभिन्न गुरूद्वारों में आयोजित कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता, वहां विभिन्न सम्प्रदायों के लोग संगत के रूप में यूं ही एकत्रित हुआ करते। पाठ के साथ-साथ सत्संग का आनन्द लेते, प्रसाद छकते, आपसी मेल-मिलाप के साथ-साथ रहते हुए जीवन बसर करते रहे थे। किसी समय हरनाम सिंह का गांव का प्रतिष्ठित व्यक्ति समझा जाता था, ग्रामवासी हर काम में उसकी सलाह लेना अपनी शान समझते थे। उसे हर घर में, हर मोहल्ले में इज्जत से देखा समझा जाता था परन्तु जब से पंजाब प्रदेश की पवित्र भूमि में से खून की नदियां बहने लगीं, जनता खून के आंसू बहाने लगी, साम्प्रदायिक सद्भावना जाने लगी, भाईचारा मिटने लगा, हल की बजाय हर नौजवान बन्दूक लेकर चल पड़ा, फसलों की बजाय उन खेतों में बारूद की फसल बोई और

काटी जाने लगी तो पंजाब की धरती पर बहने वाला खून का दरिया होते-होते पूरे देश की मिट्टी में फैल गया जिससे हरनाम सिंह और उसका परिवार भी बच नहीं पाया। उसका परिवार पूरे गांव भर में बदनाम होकर रह गया। उस पर भी आतंकवादी होने, उनसे सम्बन्ध रखने आतंकवादियों से मिले होने और उन्हें वक्त-बेवक्त पनाह देने का आरोप लगाया जाने लगा। बार-बार पुलिस द्वारा अनावश्यक रूप से सताया जाने लगा। ग्रामवासियों की निगाहें उसके इस परिवार के प्रति बदलने लगीं। दुर्भावना की ऐसी आंधी चली कि उसका बच पाना मुश्किल लगने लगा। गांव में साम्प्रदायिक कट्टरता, भेदभाव की नीति, विश्वास और भाईचारे की भावना बदल गई। उसे हमेशा संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा। जाट परिवारों से उसके सम्बन्ध-विच्छेद हो गये। गांवके खास-खास लोग एक तरफ हो गये।

गर्मियों की एक चांदनी रात में घर के बाहर चबूतरे पर बैठे हुए हाकम सिंह ने अपने पिता हरनाम सिंह से कहा था -

‘‘बापू। सरकार ने हमारी पानी वाली जमीन को अनकमाण्ड घोषित कर दिया है। उसके पास हमें

देने के लिये पानी नहीं बचता। हम सरकार और भगवान दोनों के रहमोकरम पर आश्रित है। भगवान बारिश के रूप में पानी दे देता है, तो प्यासी धरती की प्यास बुझती है, कुछ बीज डालते हैं तो थोड़ी-बहुत फसल हो जाती है। बरना हमें हर बार सूखे का मुंह देखा पड़ता है, आढ़तिये से उधार लेकर गुजारा करना पड़ता है, इधर हम भूख से दो-दो हाथ कर रहे हैं और उधर हम पर उसकी रकम और ब्याज बढ़ रहा है, बारिश होती है, थोड़ी फसल होती है जैसे ही हम कर्जा उतार पाते हैं फिर सूखा पड़ जाता है। लगता है कि भगवान हमें आढ़तिये से सुखी नहीं देखना चाहता, उसका कुछ-न-कुछ हम पर उधार ही रहता है। भगवान उस पर कुछ ज्यादा ही मेहरबान है। हमारी नींद उड़ती जा रही है और वह चैन की बंसी बजाता है। पता नहीं पिछले जन्म में हमने क्या खोटे काम किये थे जो अब दुखी रहते हैं। जाने कब वह हमारी सुनेगा ? हम कब आढ़तिये के चंगुल से छूट सकेंगे ? कब आजाद हो सकेंगे ? कब कुछ जमा करवाकर हिसाब बराबर करवा सकेंगे ? जाने वो दिन कब आयेगा। आयेगा भी कि नहीं जब हम भी चैन की नींद सोयेंगे।''

"ये सब ऊपर वाले की माया है बेटा। लगता है ऊपर वाला हमें सुख नहीं देखना चाहता। हमारी परीक्षा ले रहा है।"

"बापू। देखो यह हमारा रकबा है। हमारी बगल में पगडण्डी है। पगडण्डी के आगे चैधरी पतराम और उसके आगे कासीराम के खेत है। दोनों के खेतों की बट्ट (मेड़) सांझी है। दोनों का इस मेड़ का चक्कर हमेशा चलता ही रहता है। कभी कासीराम के खेत में बन जाती है तो कभी पतराम के खेत में। दोनों इस मेड़ के लिये हमेशा से झगड़ते रहे हैं। इनका झगड़ा बरसों से चला आ रहा है। इसी मेड़ पर न जाने कितने लोगों की जाने चली गई। अब भी हर साल दोनों घरों के सदस्य मारे जाते रहे हैं। जमीन की इस रेखा पर कितने और मरेंगे कुछ भी कहा नहीं जा सकता। कितनी पत्नियां विधवा होंगी ? कितने बच्चे अनाथ होंगे ? भगवान ही जानता है। यह वो लक्ष्मण रेखा है जिस पर हर साल कितनी ही सीता रूपी नारियां विधवा हुई हैं। सदस्यों के मरने के साथ-साथ इनकी दुश्मनी भी बढ़ती ही जा रही हैं। इसी जमीन और पानी के लिये जानें चली आ रही हैं। ये सब-के-सब मर-खप जायेंगे लेकिन मसले

कभी हल नहीं होंगे। इस बात का इन्हें भी पता है, ये भी जानते हैं कि इसमें से हासिल कुछ भी नहीं होने वाला फिर भी लड़ रहें हैं, पागल हाथियों की तरह, जिनके बीच में हम जैसे मामूली लोग मुफत में ही मारे जा रहे हैं।

हमारे व पतराम के खेतों में से यह खाला जाता है जो नहर का पानी कासीराम के खेतों तक ले जाता है। हमारे खेत में से 100 कदमों की दूरी पर नहर का मोधा बना है। अब जब सरकार ने हमारी पानी वाली जमीन को अनकमाण्ड घोषित कर ही दिया है तो यह खाला हमारे किस काम का ? अब यह हमारे भी किसी काम का नहीं रहा। क्यों न हम ये खाला ही बन्द कर देंवे हमारे लिये तो ये बेकार है अब।''

''खुदा खैर करे पुत्तर। पहली बात तो यह है कि बेटा, कभी भी रात को कोई मशविरा नहीं करना चाहिए। रात में किया हुआ सलाह-मशविरा कभी भी पूरा नहीं होता। अगर होता भी है तो काफी बड़ा नुकसान करने के बाद जो जल्दी से समझ में नहीं आता। दूसरी बात हमारे गांव में कासीराम और पतराम अलग-अलग पार्टियों के आदमी हैं। दोनो ही

बड़े-बड़े राजनीतिक दलों के कार्यकर्ता हैं और दोनों का बैर शेर और बकरी का है। दोनों खुद तो दुश्मन हैं ही साथ ही हमें भी अपने बीच में ले लेंगें। यदि हमने पानी न मिलने की दलील से खाला बन्द करने की कभी कोशिश भी की, खाला बन्द कर दिया तो कासीराम हमारा भी दुश्मन हो जायेगा। कोई ऐसा तरीका, कोई ऐसी चाल अपनानी चाहिए जिससे बिना बैर रखकर ये खाला बन्द किया जा सके। बिना लाठी तोड़े सांप भी मारा जा सके। सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। अगर बिना सांप मरे लाठी टूट गई तो सांप के जहर को तो तुम अच्छी तरह से जानते हो। वे दोनों तो कोबरें हैं। लाठियां तोड़ सकते हैं लेकिन मरेंगे बड़ी मुश्किल से।" हाकम सिंह की बात सुनकर हरनाम सिंह ने अपनी दलील दी क्योंकि इसी जहर का वह तो पहले से ही देनदार रहा था।

"बापू। अनकमाण्ड जमीन में से खाला निकालने की आज्ञा तो सरकार भी नहीं देती। हमारे खेत में बिना पानी के खाला बना होना तो वैसे ही फायदेमंद नहीं है। ये बात अलग है कि हम चाहें तो बना हुआ खाला चलने दें या बन्द कर दें। खाला चलने देना या बन्द करना, पानी निकलने देना या

उसके रोक देना हमारी मर्जी पर ही निर्भर करता है। उनके साथ हमें क्या लेना-देना। हमें खाला बन्द ही कर देना चाहिए।'' पिता की बात न मानते हुए हाकम सिंह ने अपना फैंसला सुना दिया।

''देख ले पुत्तर। अपने खेत के खाले में से होता हुआ पानी दोनों के खेतों तक पार जाता है। कासीराम और पतराम के खेतो में पहंुचता है, फसलों को सींचता है, मिट्टी के अन्दर तक पहंुचता है। फसल होती है, जीवन चलता है, सम्बन्ध बनते हैं, भाईचारा बढ़ता है। यदि हमने अपने यहां से खाला बन्द कर दिया तो उसकी लाखों की फसल सूख जायेगी, वह तबाह हो जायेगा। दूसरी तरफ से उसे दो मील से खाला बनवाकर पानी लेना पड़ेगा। समय पर खाला न बना तो फसल को पानी नहीं लग पायेगा, फसल सड़-गल जावेगी और वह हमारी तरह ही कर्जदार हो जायेगा।'' हरनाम सिंह अपनी बात कहना और रखना चाहता था परन्तु पुत्र की दलीलों सामने उसकी एक न चली, उसे चुप होना ही पड़ा। हाकम सिंह फिर से बोला-

''पतराम के साथ हमारा धरमेला उसकी आंखों में कांटा बनकर रड़कता है। इस कांटे को हम ऐसा

घुमायेंगे कि उसकी आंख में न मिटने वाला जख्म ही बन जायेगा। देखेंगे कौन साला हमें रोकेगा, खाला बन्द करने से। आग लगा देंगे आग। जलती पर और फूस डालकर सुलगायेंगे। वो अगर हमारी दोस्ती से जलता है तो जला करे। हमें किसी साले की परवाह नहीं है।'' हाकम सिंह काफी उत्साहित हो चुका था अपने धरमेले के दम पर। पता नहीं पतराम में उसने क्या विशेषता देखी थी।

''देख ले पुत्तर। हम तो पहले से ही दुखी होकर बैठे हुए हैं। अब कोई और ऐसी-वैसी, ऊंच-नीच, अनहोनी बात न हो जाये जिसके लिये बाद में हमें पछताना पड़े और हमारी भी दुश्मनी मुफत में बढ़ जाये। थानों, तहसीलों के चक्कर काट-काट कर हम तो पहले ही लुट चुकें हैं अब और समस्या खड़ी मत करो बेटा। मुझे बहुत डर लग रहा है। और मैं इन रोज-रोज के झमेंलो से तंग आकर थक चुका हूं। अब दुबारा इन चक्करों में और नहीं उलझना नहीं चाहता। अपने बुढ़ापे में ज्यादा भागदौड़ करने के काबिल नहीं बचा हूं और अब अधिक भागदौड़ नहीं कर सकता।'' हरनाम सिंह डरते-डरते बोला था।

"तू इस प्रकार से क्यों डरने लगा है बापू ? हम कोई गुड़ की डली नहीं हैं जो हमें हर कोई मुंह में रख लेगा। आजकल हम इतने कमजोर भी नहीं रहे हैं। हड्डी बन के अटक जायेंगे साले के मुंह में जो भी हमसे पंगा करने की कोशिश करेगा। हम लोहे का चना बन जायेंगे और और उसे नाकों चने चबवा देगें जिस किसी ने भी हमसे उलझने या लड़ने का नाम लिया। तुम अपने आपको इतना अकेला, इतना कमजोर भी मत समझो बापू कि हर आदमी हम पर फालतू का रोब मारे। हमारे पास भी शक्ति है। शारीरिक रूप से हम चाहे कितने भी कमजोर क्यों न रहे हों लेकिन दिल और दिमाग से कहीं ज्यादा ताकतवर हैं। तू चिन्ता मत कर बापू। कुछ नहीं होगा। बस तू तो देखता चल क्या-क्या होता है हमारे खेत में, हमारे खाले में, हमारे धरमेले का और साले कासीराम के साथ। हम कुछ-न-कुछ करके ही छोड़ेंगे।" बेटा बाप को तसल्ली दे रहा है।

अपनी योजना को अन्तिम रूप देकर बातें करते-करते दोनों सो गये। जब गांव में पंचायत के चुनाव का चक्कर चला तो पतराम व कासीराम दोनों एक-दूसरें की (एण्टी) विरोधी पार्टियों के सदस्य हो

गये। राजनीतिक विरोधाभास, सांझी बट्ट (मेड़), जमीन के, पानी के, पड़ोस के झगड़ों ने हरनाम सिंह के साथ धरमेले ने उन्हें इस कदर कट्टर दुश्मन बना डाला कि दोनों एक-दूसरे की जान के प्यासे हो गये। इससे पहले वे अच्छे पड़ोसियों की तरह, भाईचारे के साथ-साथ ही रहा करते थे परन्तु बाद में राजनीतिक कारणों से उनकी शत्रुता काफी बढ़ गई थी। पतराम के साथ हरनाम सिंह का धरमेला दिनोंदिन पक्का और गहरा होता जा रहा था जो शायद हमेशा ही बरकरार रहा था। पतराम, कासीराम और हरनाम सिंह के बीच में था खेतों में।

दूसरी सुबह मुंह अंधेरे उषाकाल में चाय पीकर, हल कंधे पर रखकर हाथ में ऊंट की मुहार पकड़े हाकम सिंह खेतों की तरफ जा रहा था। हल चलाया, बीज डाला, सुहागा लगाया जा रहा था कि उसकी बीवी बलवीरो रोटी लेकर आ पहुंची। उस वक्त शायद प्रातः के आठ से नौ बजे के बीच का कोई समय था। हाथ में घड़ी न बंधी होने के कारण उसका समय के प्रति वही लगभग अनुमान था। धूप तेज होती जा रही थी, हवा में गर्मी बढ़ रही थी। सीरी गोपालिये को आवाज देकर बुलाया। पास के ट्यूबवेल से पानी

का मटका भर कर लाया। हाथ मुंह धोकर चटनी के साथ तंदूर की बनी हुई मोटी रोटियां खाने में मसरूफ हो गये। बीच-बीच में कभी-कभी लस्सी का एकाध घूंट भी ले लेते थे ताकि तंदूर की रोटी, सखने की बजाय आसानी से निगली जा सके। इसके विपरीत गोपालिया उस मोटी और सूखी रोटी को मुश्किल से ही निगल पाता था। तब भी उन तीनों की जुबान पर पतराम, कासीराम, चुनाव-चर्चा, बारानी और अनकमाण्ड जमीन में से गुजरते हुए खाले पर ही बातचीत हो रही थी। बात-बात पर वे तीनों 'रब्ब सुख रखे' कह उठते थे पता नहीं वे चुनावों को लेकर कितना भयभीत हो रहे थे। हाकम सिंह को भी शायद विश्वास नहीं हो रहा था कि कभी खाला भी आसानी से बन्द किया जा सकेगा या नहीं। बार-बार वह किसी अनहोनी की आशंका को सोचकर कांप उठता था। खाने का काम निबटाकर, कस्सी कंधे पर रखकर, बलवीरों को दोपहर की चाय लेकर आने के लिये वापस भेजा, गोपालिये को दूसरा काम देकर स्वयं वहां तक जा पहुंचा जहां पर उसके व कासीराम के खेतों में पगडण्डी बनी हुई थी। चारों तरफ की स्थिति का जायजा लिया। इधर-उधर देखा, कुछ

सोचा और खाला बन्द करना प्रारम्भ कर दिया। अभी वह शायद दो-चार गज खाला बन्द ही कर पाया था कि उसके कानों में किसी की आहट, कदमों की पदचाप सुनाई पड़ी। उसकी नजर हाथ में दुनाली बंदूक थामे साने से चले आ रहे कासीराम पर पड़ी। कासीराम को देखकर उसके हाथ रूक गये, घबराहट होने लगी। बन्दूक का कुन्दा जमीन पर रखकर कासीराम बोला, आंखों में खून उतारकर और जुबान कठोर करके -

"और भाई हाकम सिंह। क्या हालचाल है ?"

"ठीक ही है भइया कासीराम। सब ऊपरवाले की मेहरबानी है।"

हाकम सिंह सांस लेते हुए बोला। उसकी कमीज पसीने से तरबतर हो रही थी।

"ये क्या किया जा रहा है भई ?" उसका ध्यान खाले पर कम और बूंदक पर ज्यादा था।

"देख ले भई ये सब तुम्हारे सामने ही है। कहीं से छुपा हुआ तो नहीं है।" उसका हाथ में कस्सी पर था।

''क्या बात है खाला किसलिये बन्द किया जा रहा है भई ?'' कासीराम ने शब्द थोड़े चबाकर बोलने की कोशिश की है।

''हमने सोचा। बारानी और अनकमाण्ड जमीन में खाला किस काम का, फालतू की परेशानी खड़ी करता था।'' हाकम सिंह ने बड़े ही आराम से कहा था।

''हमारे तो अभी भी काफी काम का है। हमें तो बहुत सहूलियत है इससे।'' उसने बन्दूक मजबूती से पकड़कर कहा था।

''हमें अब इसकी ज्यादा जरूरत नहीं रही।'' हाकम सिंह अपनी ही बात पर अड़ा खड़ा था, साथ-साथ उसका पसीना सूखने लगा था।

''पर हमें तो बहुत जरूरत है इसकी। खाला बन्द मत करना, खुला ही रहने दे। पानी आने दे। खाला बन्द करेगा तो तू हमेशा घाटे में ही रहेगा।'' कासीराम ने धमकी दे ही दी। बन्दूक तान ली।

''हम तो भइया। पहले से ही घाटे में जी रहे हैं। जमीन बारानी और अनकमाण्ड। भगवान और सरकार तो हमसे पहले ही नाराज हैं। सरकार ने पानी देना बन्द कर दिया और भगवान फसल नहीं

देता। जब पानी नहीं आता तो यह खांचा अब हमारे किस काम का भला। ये खाला भी घाटे वाला ही है।'' उसने तर्क दिया।

''देख भई। तेरे खेत में पानी आये या न आये। फसल हो या न हो लेकिन मेरे खेत की फसल में पानी तो इसी से ही लगेगा और आना भी चाहिए। जब सरकार देती है तो क्यों न उठायें फायदा।'' कासीराम की बन्दूक भी गरजने को तैयार थी, बेताब थी गोली चलाने को। शायद काफी दिनों से काम में नहीं ली गई थी।

''तेरे खेत का मुझसे क्या सम्बन्ध भला ? मैं तो अपने हिस्से का खाला बन्द कर रहा हूं। अपने खेत में मैं जो जी में आयेगा करूंगा।'' हाकम सिंह की कस्सी फिर से सक्रिय होने लग गई थी।

''मेरे खेत से, मेरी फसल से तेरा भी उतना ही गहरा सम्बन्ध है जितना मेरा पानी से। मेरा तेरे खेत के खाले से भी सम्बन्ध हैं।'' कासीराम ने उसे समझाने की कोशिश की, करता ही रहा।

''पानी से तो है लेकिन मेरे खेत से नहीं।'' हाकम सिंह फिर बोला।

"लगता है तू अब भी नहीं समझा।" उसने मजाक करते हुए कहा था।

"नहीं समझा तो फिर तू ही समझा दे न।" हाकम सिंह वास्तव में ही नहीं समझ पाया था।

"ये 12 बोर की देखी है कभी कि नहीं, दिखाई देती है कि नहीं।" हाकम सिंह की तरफ बन्दूक की नाल करते हुए कासीराम बोला।

"हाँ। हमेशा ही देखी है और दिखाई भी दे रही है। इसको दिखाने का तेरा मतलब क्या है।" उसका दिमाग भी अब गर्म होने लगा था।

"मतलब ये है कि भइया अगर तू खाला बन्द करेगा, चलने नहीं देगा, पानी को रोकने की कोशिश करेगा, खाला बन्द कर बहते हुए पानी को रोकेगा तो मुझे तेरे परिवार समेत रातोंरात पंजाब भिजवा दूंगा या देख लूंगा कि तू खाला किस-किस तरह से बन्द करता है। आई समझ कि नहीं या समझाऊं इससे ?" कासीराम ने उस धमकी को क्रियान्वित करने की कोशिश की।

"मुझे पंजाब भिजवाकर तू क्या यहीं पर चैन से रह लेगा। तेरा कुछ नहीं होगा। भिजवाकर देख जरा। फिर देख क्या नतीजा होता है मुझे पंजाब

भिजवाने का। तू तो समझ भी नहीं पायेगा कि तेरे साथ क्या-क्या होगा और तू कहां जायेगा।'' हाकम सिंह ने भी उसकी धमकी का जवाब देकर गोपालिये सीरी को आवाज दी।

''ओ। गोपालिया आ। अपनी राइफल लेकर आना। कहां रखी हुई है। देख कर ले आ फटाफट। देखें तो जरा इस सूरमे को। पंजाब भिजवायेगा हमें ?'' पता नहीं गोपालिया उसकी बात सुन भी नहीं पाया था कि नहीं फिर भी हाकम सिंह ने जैसे बात हवा में ही कर दी थी, अंधेरे में तीर चलाने की कोशिश की थी। वह तीर निशाने पर लगा था या नहीं यह बात कासीराम समझ नहीं पाया। हाकम सिंह ने तो उस तुक्के को ही तीर बना डाला था। धूल में मारा लट्ठ कामयाब हो चुका था।

''ज्यादा तीन-पांच की तो ठीक नहीं रहेगा। एक मिनिट लगेगा बन्दूक चलते। खाला चलेगा, पानी आयेगा, तेरी धड़कन बन्द हो जायेगी और पानी का रंग लाल हो जायेगा। खाले की जगह तुझे ही बन्द कर दिया जायेगा। खाला नहीं नदी बहेगी तेरे खून की।'' दोनों में बराबर बहस हो रही थी।

"देख ले चलाकर बन्दूक। फिर देख नजारा। देखते हैं कौन किसको बन्द करता है। किसका खून बहता है। धड़कन बन्द होगी या खाला। पानी चलेगा या खून। गोली चलेगी या नहीं।" गोपालिया सीरी बन्दूक तो लेकर आया नहीं लेकिन फिर भी हाकम सिंह ने कासीराम को जबाव दे ही दिया। कासीराम आग बबूला हो चुका था।

"धांय धांय। ये ले अब कर ले खाला बन्द।" कासीराम ने लगातार दो फायर करके हाकम सिंह को कहा था, आंतकित कर दिया था।

नाराजगी प्रकट करने के लिये कासीराम ने दो हवाई फायर किये। पेड़ो पर बैठे परिन्दे अचानक हुए फायरों की आवाज से घबराकर फड़फड़ाते हुए नीले आसमान में जा उड़े।

आसपास हल्ला होने लगा। बाकी खेतों में काम कर रहे किसान आवाज की दिशा में दौड़ते चले आये। आते-जाते मुसाफिर भी स्थिति का जायजा लेने कुछ देर के लिये रूक गये थे, नहरों पर पहरा दे रहे नहरी विभाग के कर्मचारी भी पास आकर स्थिति के बारे में जान पाते तब तक कासीराम बंदूक खोलकर खाली कारतूस के खोल फेंकता हुआ आगे बढ़ गया।

अचानक एकत्रित हुए लोग हाकम सिंह से मामला जानने की कोशिश में कुछ देर वहां खड़े रहे। मगर वह इतना अधिक आतंकित हो चुका था कि घबराहट में उसमें कुछ भी बोला नहीं जा रहा था, उसका कण्ठ सूखने लगा था। टांगे थरथरा रहीं थी। दिल की धड़कन बेबस हुई जा रही है। उससे खड़े रह पाना मुश्किल हो रहा था। गोपालिया काफी देर बाद फायरों की आवाज सुनकर दौड़ा चला आया, जब तक वह कुछ समझ पाता, तब तक कासीराम भी काफी दूर तक निकल चुका था। दूर तक जाते हुए कासीराम को देखता रहा था हाकम सिंह और फिर गोपालिये को लेकर वापस खेत में चला गया। उसकी सांस चल रही थी। चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। बार-बार उसे फायर की आवाज, दुनाली से निकलता धुआं अैर खाली खोल ही नजर आ रहे थे।

हाकम सिंह ने उस बात को लाख भुलाने की कोशिश की लेकिन चाहकर भी भूल नहीं पाया। वह जितना ज्यादा भुलाने की कोशिश करता, उतना ही आतंकित होता। जितना ज्यादा सोचता उतना ज्यादा ही उलझता जा रहा था। अन्त में उसने ठान ही लिया था कि कासीराम के खिलाफ के कार्यवाही की

ही जानी चाहिए क्योंकि अबकी बार यदि कुछ न किया गया तो हो सकता है वह दुबारा फिर धमकी ही दे दे या क्या पता गोली ही चला दे। पहले तो उसने केवल हवाई फायर ही किया था और दूसरी बार क्या मालूम कत्ल ही कर दे। उसका क्या भरोसा है। क्या पता बार-बार हवाई फायर कर-करके यूं ही आतंकित करता रहे। दुश्मन को कभी कमजोर नहीं समझना चाहिए, हमेशा उससे सावधान और दो-दो हाथ करने को तैयार रहना चाहिए ताकि दुश्मन को पता चल जाये कि दुश्मनी क्या होती है। उसे बार-बार अवसर देते रहने की बजाय कुछ प्रबन्ध कर देना चाहिए ताकि वह भविष्य में ऐसी घटिया किस्म की हरकत दुबारा करने की कोशिश न कर सके और अगर करने की कोशिश न कर सके और अगर करने की कोशिश भी करे तो अच्छी तरह से सोच-समझ कर।

सांय-काल थके-हारे हाकम सिंह ने घर जाकर हरनाम सिंह को पूरी बात बताकर, आपसी राय बनाकर दूसरे दिन पंचायत बुलाने तथा कासीराम द्वारा किये गये कातिलाना हमले की नजदीकी पुलिस स्टेशन में जाकर एफ.आई.आर. दर्ज करवाने

का फैसला किया। पतराम, कासीराम के साथ-साथ अपने खेतों में से गुजरते हुए खाले का नक्शा बनाकर मामला पंचायत के रूप में उपस्थित जन समुदाय के समक्ष रखा गया। हर व्यक्ति कासीराम को भला-बुरा कह रहा था, जिसने भी सुना वही उसके खिलाफ था। कासीराम पहले भी इस मामले में काफी बदनाम था।

बात समझकर पतराम के सर्मथकों ने खाला बन्द करने की सहमति दी इस दलील के साथ कि हाकम सिंह पर रौब झाड़ने वाला, दवाब देने वाला कासीराम कौन होता है भला ? हाकम सिंह कोई उसका गुलाम नहीं है और न ही उसका सीरी। अपनी जमीन में खाला चलाना या बन्द करना, रखना या न रखना हाकम सिंह की अपनी मर्जी पर ही निर्भर करता है न कि कासीराम की। वो अगर चाहे तो खाला चलने दे या बन्द कर दे क्योंकि उसके खेत को सरकार ने अनकमाण्ड घोषित कर दिया है, खेत में पानी नहीं लगता। पानी अगर लगता तो भी वह खाला रोकने का हकदार है। कासीराम मांग कर लेवे तो खाला खुला रहना चाहिए वरना यदि सहजोर दिखाकर, डरा-धमकाकर रास्ता मांगे तो उसे बेहिचक

और तुरन्त इन्कार कर दिया जाना चाहिए। खाला फटाफट बन्द कर देना चाहिए। उसका भाईचारा नहीं तो पानी रोक देना चाहिये, इसके विपरीत कासीराम के समर्थकों ने खाला खुले रहने व दुश्मनी मोल न लेने की दलील देते हुए उसके बड़े और भ्रष्ट लोगों से समबन्ध होने से पुष्टि की। हाकम सिंह खुद भी असमंजस में था। वह एक ठोस निर्णय नहीं ले पा रहा था। किसी नतीजे तक पंहुच नहीं पा रहा था। वह यह भी सोच नहीं पा रहा था कि ऐसी ही विकट स्थिति में किया क्या जावे तब हालात सांप के मुंह छंछुदर या आगे कुआं पीछे खाई जैसी होकर रह जाये। कदम बढ़ाया जाये या उठते हुए या आगे बढ़ते हुए पीछे हर कदम को वापस खींच कर लौट चला जाये। बढ़ता है तो कुएं में गिरने का भय और पीछे हटता है तो खाई में तो गिरा हुआ है ही। और हाकम सिंह को निर्णय लेना ही पड़ा। सूली पर चढ़ना ही पड़ा। उठते हुए कदम को गति देनी ही पड़ी। कासीराम के खिलाफ थाने में जाकर एफ.आई.आर. दर्ज करवाने की कार्यवाही करनी ही पड़ी। लेकिन इस कार्यवाही पर उसे कितनी संतुष्टि हुई शायद वह खुद भी नहीं जानता था।

जब दर्ज करवाई गई एफ.आई.आर. पर काफी दिनों तक किसी भी प्रकार की कार्यवाही होती हुई मालूम नहीं हुई तो उसका संदेह विश्वास में परिवर्तित होने लगा। लोगों की कही हुई बातें, उसके उच्च राजनीतिक सम्बन्धों की पुष्टि का प्रमाण देने लगीं। उसे मानना ही पड़ा कि कासीराम एक नम्बर का बदमाश था। पटवारी ने भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया। इसके विपरीत पतराम के पुत्र कालूराम की भी हाकम सिंह से अच्छी-खासी यारी थी। दोनों की खूब अच्छी पटती थी। चारों ने आपस में मिलकर अपने स्तर पर कार्यवाही करने की योजना बनाई और दिन व समय तय करके खाला बन्द करने का फैसला किया। अवसर देखकर पतराम, कालूराम, हरनाम सिंह, हाकम सिंह, गोपालिया सीरी अस्त्रों-शस्त्रों से लैस पटवारी, थानेदार, पुलिस दल के साथ अपने बारानी और अनकमाण्ड खेत की जमीन में उस स्थान पर एकत्रित हुए जहां से खाला हरनाम सिंह की जमीन में प्रविष्ट होता था और जिसके लिये कासीराम उसको देख लेने और सपरिवार पंजाब भिजवाने की धमकी देता रहता था। गोपालिये ने खाला बन्द करना प्रारम्भ किया।

इधर कासीराम को भी खबर लगी और वह भी अपने दल-बल के साथ वहीं आ पहुंचा और हांफते हुए बोला-

‘‘क्या बात है पतराम। तुझे चलता हुआ पानी अच्छा नहीं लगता क्या ? मैं तुम सबको देख लूंगा। एक-एक को खत्म कर डालूंगा।’’ उसकी हां-में-हां मिलाने वालो की कमी न थी जो बात को हमेशा से ही बढ़ाना चाहते थे। वो नहीं चाहते थे कि कोई उनके सामने मिलकर रहे। भाईचारे से रहे।

‘‘देख कासीराम। खाला मांग के ले ले। भाईचारे से रहे तो हम भी कभी भी मना नहीं करेंगे। लेकिन अगर तू बन्दूक दिखाकर खाला लेना चाहता है तो ये सब तेरी बहुत बड़ी भूल है। नासमझी है।’’ पतराम ने दलील देने की कोशिश की।

‘‘लगता है कुछ ज्यादा ही पंख निकल आये हैं, बहुत ऊंचा उड़ने लगा है। ज्यादा भूख लगने लगी है।’’ कासीराम को तो जैसे चैन ही नहीं था, आग लगी थी।

‘‘किसके कितने ज्यादा पंख निकलने लगे हैं यह तो तू भी अच्छी तरह से जानता है। और फिर पंख में दम हो तो उड़ान अपने आप ऊंची हो जाती

है। बढ़ती उम्र के साथ-साथ भूख भी बढ़ेगी ही। हर परिन्दा, पंख रखने वाला बहुत ऊंचाई तक उड़ना पसन्द करता है। भूख पूरी होनी भी जरूरी है। रोज-रोज के झगड़ों से तो अच्छा है हम आज ही झगड़ा एक बार में ही मिटाकर निपटारा क्यों न कर दें, जड़ से ही खत्म कर दें। मेरे खेत और इस हरनाम सिंह के खेतों में कोई अन्तर नहीं है। इसका खेत मेरा खेत, मेरा खेत इसका खेत। हम दोनों भी एक हैं।'' पतराम का सीरी भी गोपालिये के साथ ही खाला बन्द करवा रहा था। कासीराम बिना कुछ बोले, हारे हुए सिपाही की तरह वापस मुड़ गया। पतराम ने हाकम के कान में कुछ कहा, सुनते ही वह दौड़ कर खाले के दूसरे सिरे पर गया। कस्सी उठाकर खाला बन्द करने में जुट गया। उसके चेहरे पर संतुष्टि थी और दिल में तसल्ली कि कासीराम उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका था। पतराम ने कहा था, ''कासीराम यदि तू खाला बन्द करने के काम में पंगा लगायेगा तो तुझे भी खाले के साथ ही गाड़ दिया जायेगा। सोच ले खाला बन्द करने देता है या खुद ही गढ़कर अपनी समाधि बनाना चाहता है।'' उसके पास कोई

जवाब नहीं था सिवाय इसके कि चुपचाप खिसक ले, अपनी जान बचा ले।

कुछ समय बाद गांव में पुलिस आयी। हाकम सिंह को हथकड़ी लगाकर ले गई उसके सिर पर किसी की हत्या के साथ-साथ और भी कई प्रकार के आरोप लगाये गये थे। शायद वह खाला बन्द करने का परिणाम था या कुछ और। कासीराम के सिवा यह बात उस गांव का कोई भी वाशिन्दा नहीं जान पाया था।

(मधुमती के मार्च 1990 के अंक में प्रकाशित कहानी)

7.पिंजरे का पन्छी

“वीणा के तारों को अत्यन्त ढ़ीला न करो, ऐसा न हो कि बज ही न सके तथा इतना अधिक भी मत कस दो कि वे टूट जायें, उनमें से कोई सुर न निकल पाये।” मोक्ष प्राप्ति के लिये महात्मा बुद्व ने मध्यम मार्ग अपनाते हुए सत्य ही कहा था, “शरीर को अत्यधिक कष्ट देनेसे किसी भी दशा में स्वर्ग नहीं मिल सकता, केवल नुकसान ही होता है। लक्ष्य प्राप्त करने में कठिनाई आती है।”

बीते दिनों की याद आते ही मेरी आंखें स्वतः ही नम हो जाती है। अपनों के लिये आंसू बहाते तो सभी को ही देखा है। परन्तु गैरों को रोते हुए चुप करवाना निश्चित रूप से बहुत ही मुश्किल काम है। खुदा करे मेरी उम्र भी मेरे उन माता-पिता को लग जाये जिन्होनें मुझे समय जैसी अमूल्य नीति की कद्र

करनी सिखाई। मेरा उठना-बैठना, खाना-पीना, पढ़ना-लिखना और यहां तक कि मनोंरजन आदि सबका एक निश्चित समय होता था। सूर्य पश्चिम में उदय हो सकता था मगर उनके अमूल्य उसूल हमेशा दृढ़ रहते थे, वे कभी बदल नहीं सकते थे और बदलने की किसी ने हिम्मत भी नहीं की थी। क्या मजाल कि मैं पढ़ने के समय खेल लेता या खेलने के समय पढ़ लेता। कहते है ना कि सयाने के कहे और आंवले के खाये का असर हमेशा बाद में होता है। कड़वे आंवले का मीठापन भी एक बार मुंह जलने के बाद होता है। काम की बात हमेशा ही बुरी लगती है और नुकसानदायक बात हमेशा अच्छी। यह सब इसी समझ का फेर है। बाद में अपना असर दिखाती है अच्छी-अच्छी बातें। खाते समय आंवला भी एक बार कड़वा लगता है लेकिन बाद में पानी पीने के समय मुंह को चीनी की तरह मीठा कर देता है, देर तक मुंह में आंवले की मिठास कायम रहती है। ठीक उसी तरह उनके दृढ़ उसूल भी मुझे कुनैन की टिकिया की तरह जहर जैसे कड़वे लगते थे। कभी-कभी तो मैं सोचा करता कि कंही वे लोग मुझे पाबन्दियां लगा-लगाकर घड़ी जैसा ही न बना डालंे क्योंकि मैं जब

कभी भी कुछ करने बैठता तो पड़ौसी समय का सही-सही अनुमान लगाने लगे। मेरा सारा का सारा कार्यक्रम घड़ी के **12** घण्टों में बदल गया। मैं फिर घड़ी में समा गया और घड़ी मुझमें। हम दोनों एक हो गये थे। आज मैं उन्हीं पाबन्दियों और उसूलों की बदौलत ही अधिशाषी अभियंता के रूप में एक राजपत्रित अधिकारी के पद पर आ चुका हूं। मेरा मस्तिष्क उनके प्रति श्रद्वा से झुक जाता है। कार्यालय से पहले और कार्यालय के बाद के समय में आज भी नित्य प्रति दो-दो घण्टे टहलना मेरे जीवन का अभिन्न अंग बनकर रह गया है।

एक रोज जीप में बैठा हुआ जैसे ही बाजार में से निकल रहा था, उस दृश्य को देखते ही अचानक मेरे पांव का दवाब एक्सीलेटर पर बढ़ गया व दुर्घटना होेते-होते बाल-बाल बची। एक भिखारी के बदन पर फटा - पुराना चोगा, बढ़-बढ़कर खिचड़ी हुए बाल और मुद्दत से न नहा सकने की वजह से बदन पर मैल की मोटी परत जमी हुई थी। इससे पहले कि वह किसी मुसाफिर द्वारा फैंके हुए केले के छिलके उठाकर खा पाता, किसी सफाई कर्मचारी ने उसकी

कमर पर भरपूर ठोकर जमाते हुए एक भद्दी सी गाली देते हुए कहा था-

"पता नहीं कहां से चले आते हैं ये इतने-सारे भिखमंगे। जीना हराम कर दिया है इन जानवरों ने। अच्छी-खासी सेहत होते हुए भी काम नहीं करना चाहते हरामजादे। जरूरत ही क्या है काम करके खाने की भला मुफत का जो मिल जाता है सड़कों पर फैंका हुआ इन्हें। जिसे एक बार मांगने की आदत पड़ गयी वो क्या कभी काम कर सकता है।" अभी वह अच्छी तरह से उठ भी नहीं पाया था कि जाते-जाते उसने फिर एक भरपूर ठोकर रसीद कर दी। वह दोबारा सड़क पर औंधे मुंह पसर गया। चेहरा जगह-जगह से छिल गया और नाक से खून बह चला, केले के पत्तों को टोकरी में डालकर ले गया।

"जानवर भी मुंह नहीं लगाते इन पत्तों को। मगर ये हराम के पिल्ले हैं कि कुछ भी मिल जाये सड़कों पर पड़ा हुआ, चील-कौवों की तरह टूट पड़ते है।" नाक से बहा हुआ खून नीचे बह जाने की बजाय जूट की तरह उलझी हुयी दाढ़ी में समाने लग गया जैसे कि उसमें स्याहीचूस लगा दिया गया हो।

सड़क पर बड़ी मुश्किल से उसने चेहरा उठाया तो सहसा ही मेरे बदन में बिजली-सी कौंध गई। यादों के बादल गड़गड़ाने लगे। सैंकड़ों भिखारियों को आने-जाने वालों के आगे हाथ फैलाकर गिड़गिड़ाते हुए देखा मगर उसने तो जैसे मेरे दिमाग में एक प्रकार का विस्फोट-सा ही कर दिया। वह मुझे पहचानने में असमर्थ रहा था। पहचानता भी तो कैसे भला ? बरसों पहले वह अपनी याददाश्त खो बैठा था। तुरन्त जीप रोककर उसे बिठाया और चल पड़ा। मेरे मानस पटल पर उसका बचपन चलचित्र की तरह उभरने लगा। मैं अपनी यादों और अनुभवों की मूसलाधार बारिश में भीगने लगा था।

मेरे देवतातुल्य पिताश्री किसी दफतर में आशुलिपिक के पद पर काम करते थे व माताश्री किसी पाठशाला की प्रधानाध्यापिका थी। परिवार में हम कुल ले-दे कर चार ही सदस्य थे। मेरी एक छोटी बहन थी। पढ़ाई-लिखाई का शौंक हम दोनों भाई-बहन को विरासत में ही मिला था और बचपन में हीहम दोनों पढ़ने में काफी बुद्विमान थे। हमारी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा भी माताश्री की देख-रेख में हुई। हम दोनों में से मैं काफी बड़ा था। हम अलग-

अलग कक्षाओं में पढ़ने लगे। हमेशा अच्छे अंक लेकर ही पास होते, कक्षा में दूसरा या तीसरा स्थान लेते। पिताश्री हमारा काफी उत्साह बढ़ाते और कहते-

"देखों बच्चों ! जो तुम दोनों में से आगे जायेगा उसे सुन्दर-सी घड़ी मिलेगी।"

हमारी आंखों के सामने सुन्दर-सुन्दर घड़ियां नाचने लगती और परीक्षा व परिणाम दिखाती रहतीं। न खाने की सुध रहती न पीने की। बस घड़ी पाने की प्रतियोगिता में पुस्तकों के पीछे हाथ धोकर ही पड़ जाते। मैं आठवीं कक्षा में बाजी मार गया और पिताश्री ने अपने वचनानुसार घड़ी दिलवाते हुये कहा था-

"देखों भई अनिल! तुम्हें पता हो कि नहीं, अब तुम्हारे सारे-के-सारे विषय बदल जायेगें। आज तक तो तुम सभी विषय एक साथ पढ़ते आये थे लेकिन अब कला, वाणिज्य व विज्ञान के रूप में इन्हें अलग-अलग पढ़ा जायेगा। तुम्हें इनमें से एक अपनी इच्छा के रूप में, अपने-अपने शौक के रूप में न कि किसी की देखा-देखी, किसी भेड़चाल में। बोलो तुम क्या पढ़ोगे ?"

"जी। जी" मैं। जो आप कहेगें वही।" मैने हकलाते हुए कहा था।

"कितनी गलत बात है यह बेटे। पढ़ेगें आप और विषय का चुनाव करें हम। बिल्कुल नहीं। तुम ही बताओ, जो तुम्हें पसन्द हो।" पिताजी ने मेरा उत्साह काफी बढ़ाते हुए कहा था। वे नहीं चाहते थे कि मैं उनकी पसन्द का विषय पढ़ूं।

"जी। मैं वो""।"

"हां""। हां, फटाफट बोल दो बस।"

"जी ! मैं विज्ञान में गणित पंढूगा।" मेरा उत्तर था।

"ठीक है। तब तुम आराम से छुट्टियां बिताने का कार्यक्रम बनाओ। जब भी स्कूल खुल जायेगें, कक्षाएं लगने लगेंगी। तब तुम्हारा पंसदीदा विषय भी दिलवा देगें।

"जी धन्यावाद।"

"लेकिन एक बात हमेशायाद रखना बेटा अनिल।"

"कहिये पिताश्री।"

"एक तो तुम किसी की देखा-देखी कोई भी विषय मत लेना। विषय वही लेना जिसमें तुम्हें रूचि

हो और अगर अब लिया हुआ विषय समझ में न आये या कठिन लगे तो उसे तुरन्त बदलकर दूसरा विषय ले लेना। कहीं ऐसा न हो कि शर्म-शर्म में एक बार लिया हुआ विषय बदलना तो चाहो परन्तु बदल न सको और उम्र भर पछताते रहो या ठीक तरह से पढ़ न सको, फेल हो जाओ। दिल की बात किसी को भी कह न सको।"

"जी। अच्छा मैं ऐसा ही करूगां।"

"अच्छा अब जाओ। और कुछ मनोरंजन करो। पिक्चर देखो, पिकनिक मनाओ।"

नौंवी कक्षा में ऐसा भी सहपाठी आया जो मेरे पास-पड़ौस में ही रह रहा था और अपेक्षाकृत गरीब और अल्प शिक्षित परिवार से था। मां-बाप के कठोर से कठोर बंधन ने रमेश को इस कदर कमजोर और शर्मीला बना दिया कि पढ़ाई में अच्छा होते हुए भी वह कभी भी अच्छे और संतोषजनक अंक प्राप्त न कर सका बल्कि कभी थर्ड श्रेणी लाता तो कभी सप्लीमेण्टरी लाता। उन्हें रमेश की पढ़ाई-लिखाई से कोई भी वास्ता नहीं था। उन्होनें जब देखा और सुना कि मैं विज्ञान में गणित विषय ले रहा हूं तब वे उसे कहने लगे -

"देखों रमेश ! अनिल ने विज्ञान में गणित विषय लिया है तुम भी यही विषय ले लो।" वह उनकी पाबन्दियों से बहुत ही दबा हुआ था, आंतकित था।

"जी मैं इतना होशियार कहां कि विज्ञान में गणित जैसा कठिन विषय पढ़-लिख सकूं। मैं तो पहले से ही गणित में कमजोर हूं और मेरी इसमें कोई रूचि भी नहीं इसे पढ़ने की।" डरते हुए लहजे में उसने जवाब दिया था।

"तुम्हें अगर स्कूल जाना है तो गणित ही लेना पड़ेगा वरना स्कूल छोड़ दो।"

"आप कहते हैं तो मैं गणित जैसा मुश्किल विषय ले लेता हूं लेकिन मेरी रूचि तो केवल कला में है। मैं गणित ठीक से पढ़ भी नहीं पाऊंगा।" रमेश ने फिर वही रोना रोया। गणित से तो पहले ही डरा हुआ था।

"पगले कहीं के विज्ञान पढ़ने वाले डॉक्टर, इंजीनियर, सार्जेण्ट और न जाने क्या-क्या बन जाते हैं। कला वाले जिंदगी भर मास्टरगिरी करते हुए रह जाते हैं।" उस विषय को पढ़वाने के लिये कितने ही बेबुनियाद आधार बनते रहते थे।

“अगर मैने गणित विषय ही लिया तो मैं कुछ भी नहीं बन पाऊंगा।

“हम तेरा भला ही तो चाहते है, तू हमें समझने की कोशिश क्यों नहीं करता मूर्ख ? हम भी तो चाहतें है कि तू भी जिंदगी में डॉक्टर या इंजीनियर बने।”

“ठीक है जैसी आपकी इच्छा। आपकी बात मानकर मैं भी गणित पढ़ूंगा लेकिन मुझे विश्वास नहीं है।”

“शाबास बेटा। सदा सफल रहो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारा मार्ग-दर्शन करता रहेगा।” उसके पिताजी अक्सर यही कहते रहते थे। वह कितना सफल हुआ उन्हें बाद में मालूम पड़ा जब उनकी जिद के सामने रमेश की एक न चली।

कहते हैं जब सन्तान बचपन को त्यागकर जवानी की दुनिया में पर्दापण करने लगती है। जवानी उनका जोर-शोर से स्वागत करती है तो कई प्रकार से अंध विश्वासों से घिरे हुए कितने ही अनपढ़ या कम शिक्षित माता-पिताओं को अनन्त अज्ञात भय भी सताने लगते हैं कि पता नहीं उन्हें कैसा वातावरण मिलेगा, कैसी संगति मिलेगी, कैसे-कैसे दोस्त-मित्र

मिलेंगें। कहीं उनका चरित्र ही न बिगड़ जाये, कोई उन पर झूठा इल्जाम ही न लगा दें। कहीं उनका चरित्र ही न बिगड़ जाये, कोई उन पर झूठा इल्जाम ही न लगा दे। न जाने इस प्रकार के कितने ही बुरे-बुरे सवालात और ख्यालात उनके डरे हुए दिल में घर बना जाते है। उन सबको हल करने का उनके पास सिर्फ एक ही प्रबन्ध है पाबन्दी की कैद। यानि सन्तान को घर से बाहर निकलने की मनाही। वे सन्तान पर पाबन्दियों का बन्धन इस कदर कसने लगते हैं कि जवान सन्तान घर के पिंजरे में परकटे परिन्दे की तरह फड़फड़ाकर रह जाती है, कैदी बन जाती है। उनका सारा वक्त घर पर ही कटता है। कब दिन होता है और कब रात उन्हें समय का बिल्कुल भी आभास नहीं रह पाता। कुछ ऐसा ही व्यवहार हुआ रमेश के साथ और उसे भी कभी भी मालूम नहीं पड़ा कि कब शाम ढ़ली और कब रात हुई।

"बेटा रमेश ! मैं नहीं चाहता कि कल को कोई तुम्हारी तरफ अंगुली उठाये, झूठी बात फैलाये, बदनाम करे या कुछ और। इसलिये बेहतर यही होगा कि तुम हमेशा घर पर ही रहो, पढ़ाई में व्यस्त

रहो।" रमेश की आठों पहर कभी पिताश्री की तरफ से तो कभी माताश्री की तरफ से आदेश मिलता ही रहता। जो मिलते ही लागू भी हो जाता, उसके लागू होने में कोई छूट या टालमटोल नहीं होता था।

"कहां से आ रहे हो ?" हमेशा का यही एक प्रश्न होता।

"जी, अनिल के घर से।"

"क्या काम था ?"

"जी कुछ सवाल हल करने थे। कुछ और भी पूछना था।"

"तम्हारे दिमाग में कचरा तो नहीं भरा हुआ है जो बार-बार अनिल के पास जाने का बहाना करते रहते हो। पता नहीं क्या रखा है उस आवारा के घर। कितनी ही बार समझाया है कि घर में बैठकर ही पढ़ो। कभी बाहर मत निकलो। अब कभी दरवाजे पर या उस अनिल के घर दुबारा जाते हुए देख लिया तो टांगे तोड़कर चारपाई में डाल दूगां हमेशा के लिये। समझे। हट जाओ मेरे सामने से।" जब देखों बेचारे को हर तरफ से डांट पड़ती रहती है। पिताश्री ने तो केवल घूमने से मना किया था। लेकिन माताश्री तो

उनसे भी दो कदम आगे निकल गई। हमेशा कहती रहती हैं -

"बस घर में ही पड़े रहो। पढ़ते रहो। सवाल आये या ना आये।"

"अनिल बेटा। खुदा के लिये तुम चले जाओ यहां से। मत आया करो यहां। तुम्हारे पीछे लगकर हमारा रमेश भी बिगड़ जायेगा। खुद तो तुम आवारा घूमते हो न पढ़ते हो और न पढ़ने देते हो। रमेश जब भी किताब उठाने लगता है कोई-न-कोई आ धमकता है। पता नहीं कैसे इसके सवाल हल होगें, कब सिलेबस खत्म होगा।" रमेश के पिताजी मुझे अक्सर कह देते थे। मुझसे हाजिर जवाबी के तौर पर कभी कुछ भी कहते हुए न बनता और चेहरा झुकाये चला आता। उनकी बातों का मैने कभी भी बुरा नहीं माना था। हालांकि मेरी दिनचर्या में कोई विशेष अन्तर भी नहीं आया था। अपना घरेलू काम पूरा करके फालतू समय में जब कभी भी उनके घर मैं रमेश से मिलने जाता तो वे मुझे आवारा ही समझते थे क्योंकि वे नहीं जानते थे कि मैं अपना काम हमेशा पूरा रखता था। खेलने की बजाय बस टहलना प्रारम्भ किया था। ऐसे में कभी-कभार उधर

चला भी जाता तो बार-बार उनके मुंह से वही बात सुनकर उदास हो जाता। बुरा तो रमेश को भी लगता था मगर बेचारा मूक बना सील गाय की तरह देखता रहता, प्यासी मछली की तरह तड़पता रहता।

घड़ी की सुईयां अपनी रफतार से चलती हुई सैकिण्ड्स, मिनिट्स, घण्टे, दिन, माह और यहां तक कि वर्ष पार करती हुई पचास बदलती रहीं। आज तक कुल कितने कैलेण्डर्स बदले गये कुछ पक्के तौर पर कुछ कहा नहीं जा सकता। जब रमेश थर्ड और मैं प्रथम स्थान ले आया तब रमेश के पिताश्री ने कहा था-

"वह आवारा अनिल। पहला नम्बर कैसे ले आया ? जब देखो टहलता ही रहता है, सड़कों पर घुमता हुआ मिलता है सुबह शाम और तू हमेशा किताबों को पढ़ता हुआ। कहीं-न-कहीं कुछ तो गड़बड़ है ही नहीं तो तुझे प्रथम आना ही चाहिए था और उसे थर्ड। इतने कम नम्बर आने का मैं पता लगाकर छोड़ूंगा। परिणामों की पुनः जांच करवायी परन्तु अगर कंही गलती होती तो अवश्य ही मिल जाती। कब तक छुपती भला परीक्षकों की नजरों से। साथ पढ़ते-पढ़ते, कक्षाओं की सांप सीढ़ियां चढ़ते हुए हम

दोनों कॉलेज में आ गये। रमेश पर माता-पिता का दबाव और आंतक दिन-ब-दिन बढ़ने लगा। अपनी समझ में तो वे उसका उज्जवल भविष्य बना रहे थे परन्तु उन्हें क्या पता था कि वहीं भविष्य कितना ज्यादा अंधकारमय होगा। उस हालत में तो वे उसके भविष्य का सही अर्थ ही नहीं लगा पाये और न ही उन्होनें कभी किसी से सलाह-मशविरा ही किया था। अनिल तो उनकी उम्र से काफी छोेटा था और उससे सलाह-मशविरा करना नहीं चाहते थे। अभिभावकों के बुने-बुनाये सबके-सब सपनें जब साकार होने से पूर्व ही रेत के किले की भांति मिट्टी में मिल जायें तो स्कूल के नाम से उनका विश्वास उठने लगा, स्कूल से उन्हें चिढ़ होने लगी। उनके लिये स्कूलों का महत्व कम होने लगा। उनका नजरिया बदलने लगा।

पढ़ाई की ज्यादती की वजह से रमेश की नजर कमजोर व दिमाग खराब होने की-सी स्थिति में अग्रसर हो रहा था। मेरे लिये उसके दर्शन ही दुर्लभ हो गये। अगर संयोग से कहीं पर मिल भी जाता तो पाबन्दियों के रोने रोता कहने लगता-

“अनिल ! मेरे दोस्त, मै घर रूपी पिंजरे में पालतू तोते की तरह मजबूर-सी जिंदगी जीने पर

विवश हूं। पिंजरे की सलाखों के पीछे से जैसे पंछी को चुग्गा डाल दिया जाता है परन्तु दरवाजा नहीं खोला जाता ठीक वैसे ही मुझे कैदियों की तरह खाना डाल देते है। मैं अपनी इच्छा से सांस भी नहीं ले सकता। बन्द कमरों में हमेशा ही मेरा मन घुटता रहता है जैसे चारों तरफ कार्बनडाइ ऑक्साइड फैल रहा है उनकी पाबन्दियों का जहर भर रहा है किसी बन्द केबिन की तरह। शायद बहुत कम रह गयी है मेरी जिंदगी। बहुत ही मजबूर हूं मैं दोस्त। तू कभी बुरा मत मानना और हमेशा यही प्रार्थना करना कि ईश्वर मेरे माता-पिता को सद्बुद्वि दे ताकि ये लोग मेरा हाल जानने की दृष्टि पा सकें।" भावुकता में बेबस आंखे सावन की घटाओं जैसे बरसने लगतीं। अक्सर वह खोया-खोया सा रहता। उसी दौरान मैने प्री-इंजीनियरिंग टैस्ट का इम्तिहान पास कर लिया था। उसके दो छोटे भाई सब्जी का ठेला लगाने लगे।

संयोग से एक दिन जब मेरा उनके घर जाना हुआ उसके पिताजी विलख-विलख कर विलाप करने लगे-

"मेरा रमेश। मेरा रमेश। अंधे की लाठी, बूढ़े का सहारा चला गया। आंखो की ज्योति अंधकार में

परिवर्तित हो गयी। बेटे अनिल मैं किसी को भी मुंह दिखाने के काबिल न रहा। लोग कहेंगें मैने उसे तंगी में घर से निकाल दिया मगर वह दिमाग के खराब हो जाने के कारण अचानक एक रात घर से निकल गया। अब मैं क्या कहकर अपने इस दिल को समझाऊं बेटे। इस घर का चिराग जाने कहां चला गया। जालिम जमाना मुझे जीने नहीं देगा।" जब दिल पर और अधिक काबू न रहा तो वे फूट-फूट कर रोये मगर जालिम दिल की भड़ास कभी भी नहीं निकलती।

दुख तो मुझे भी बहुत हुआ परन्तु उन्हें किसी भी प्रकार की सांत्वना दे सकने में नाकामयाब रहा। समाचार पत्रों में मय तस्वीरों के विज्ञापन भी देने के बावजूद सब कुछ व्यर्थ चला गया। खुदा जानेवह सागर-सी-दुनिया की भीड़ में कंहा खो गया, किस धारा के साथ बह गया, कहां-कहां बहकर गया।

रास्ते भर उसकी जिंदगी के भंवर में डूबता-उतराता मैं घर पहुंचा। नौकर को डॉक्टर बुलाने का आदेश देकर उसे नहलवाकर भला आदमी बना दिया। कुछ दवा देकर डॉक्टर ने उसे किसी अच्छे मानसिक रोग विशेषज्ञ को दिखलाने की सलाह दी। फिर अपने

उस मित्र के पास ले गया जो केवल मानसिक रोग विशेषज्ञ ही था और जो दूर-दूर तक प्रसिद्व था। जिसके उपचार से रमेश ठीक हो सका, धीरे-धीरे उसकी खोई हुई स्मरण शक्ति लौटने लगी। उसे पिछली जिंदगी के बारे में सब कुछ याद आने लगा। कुछ दिन बाद वह सबकों अच्छी तरह पहचानने भी लगा।

"वह वृद्व पिता न जाने किसके सहारे जिंदगी की गाड़ी का बोझ ढ़ो रहा होगा। एक बार रमेश को अवश्य ही जाना चाहिए। जब जवान बेटे को देखेगें तो वे खुशी से पागल ही हो जायेंगें और मुर्दा बदन भी जिन्दा हो उठेगा।"

कितना मार्मिक बन पड़ा था वह दृश्य जब मां ने रमेश को अमरबेल की तरह लिपटा लिया था। लगता था जैसे मां-बेटा एक हो जायेगें। मेरे कानों में एक क्षीण आवाज पड़ी लेकिन वही आवाज कहना बहुत कुछ चाहती थी।

"और कौन है तुम्हारे साथ बेटा रमेश। वो कौन है खुदा का प्यारा जो तुझे वापस घर लेकर आया। ? जिसने हम सब पर, इस घर पर अहसान किया है।"

"मेरे साहब है पिताश्री। जिन्होनें सड़क से उठाकर मुझे कुर्सी पर बिठा दिया। इन्हीं के अधीन आज मैं कैशियर की नौकरी भी कर रहा हूं।" उसके वृद्व पिता ने मुझे पहचानने की असफल कोशिश की, अंधो की तरह टटोलते रहे, मुझे ही बोलना पड़ा।

"जी ! मैं आवारा अनिल। जो अक्सर इसे पढ़ने में सहायता देता था और हमेशा मदद देना चाहता था। लेकिन आपको तो वह हमेशा ही आवारगी लगी। आपको कभी भी यह अच्छा नहीं लगा कि रमेश मेरे साथ रहे, मेरी संगति में रहे।"

"क्या ? उन्होनें कुछ याद करने की कोशिश की थी।

"हां, मैं वहीं अनिल जो रमेश की पढ़ाई में हमेशा बाधा बनता रहा था, अब तो आपने दिन भर पढ़ने का अंजाम देख और भुगत लिया न, आपको तो मालूम और महसूस हो ही गया होगा। आप जान ही गये होगें पाबन्दियों का परिणाम।"

"मैं बहुत शर्मिन्दा हूं अनिल बेटे। मुझे क्या पता था कि ऐसा होगा। मैं कई अन्य विश्वासों में जकड़ा रहा। अब पता चला कि प्रत्येक काम समय पर ही अच्छा लगता है। मैं भावी अभिभावकों को

यही परामर्श देना पसन्द करूगां कि वे अपनी सन्तान को न तो इतना अधिक बंधन में रखें कि वह घर का कैदी होकर पढ़ाई में रमेश की तरह पागल हो जाये और घर से भाग जाने जैसा साहसिक कदम उठाये तथा इतना अधिक खुला भी न छोड़ दें कि आवारा होकर लक्ष्यहीन हो जाये और किसी भी मंजिल तक पंहुचने में असमर्थ रहे। न घर का रहे न घाट का। उन्हें सदा महात्मा बुद्व के द्वारा बताये हुए मध्यम मार्ग पर चलना चाहिए जैसा कि अनिल के माता-पिता ने किया।"

और वे अपने आपको बहुत बड़ा अपराधी मानने लगे। दुख में इन्सान रोया ही करता है लेकिन कभी-कभी खुशी के अवसरों पर भी रोना पड़ता है। खुशी के उस सावन से कितनी वर्षा हुयी इसका अनुमान लगाना मुश्किल है।

मैं भी अपने आपको, उस दृश्य को देखकर रोक न पाया था। न जाने उनके मुंह से कितने, कितनी देर तक आशीर्वाद निकले थे मेरी और मेरे माता-पिता की खातिर।

(दैनिक पंजाब केसरी के **15** अगस्त **1984** के स्वतन्त्रता विशेषांक में प्रकाशित)

8. मम्मी ! खाना दो

मुझे नहीं मालूम यह सब कैसे और किसकी गलती से हुआ ? कौन सा आदमी उत्तरदायी है ?

मैं अपनी कक्षा के कमरें में बन्द हो चुका हूं। शायद हमारा चपरासी शायद यह भूल गया था या कमरा बन्द करने से पहले, कमरा बन्द करते हुए या कमरा बन्द करने के समय और बाद में उसने यह सब देखने की आवश्यकता ही महसूस नहीं की होगी कि ताला लगाने से पहले कमरे में झांक ही लिया करे। कभी उसके ख्याल में ही नहीं होगा कि डैस्कों, बैंचों, ब्लैक बोर्ड, पंखो, स्विचों तथा बल्बों के अतिरिक्त भी कमरें में कोई हो सकता है। वह अपनी ही मस्ती में चाबियों का गुच्छा उठायें हुए आया होगा, बीड़ी फूंकता, गुनगुनाता, पान चबाता हुआ, घूमता-डगमगाता, नशें में धुत लापरवाही से कमरों के ताले खोलकर बन्द करके चला गया होगा और उसने यह भी तो सोचा ही होगा कि रोज की तरह सभी बच्चे एक-एक करके अपने-अपने घरों को चले गये होगें। वैसे भी कई बच्चों को घरों तक पंहुचाने का काम रिक्शावाला या वैन ड्राईवर का है उसका

नहीं। उसका काम तो केवल सुबह स्कूल लगने से पहले ताले खोलकर कमरों को खोलना है ताकि सफाईवाला कर्मचारी समयानुसार सफाई कर सके, डैस्क साफ कर सके और शाम ढ़ले कमरों को बन्द करके अच्छी तरह से ताला लगाना भर ही उसका मुख्य काम है। लेकिन आज उसकी यह सोच झुठला गयी, मात खा गई। उसकी जिंदगी में शायद ही कभी ऐसा हुआ हो। आज पहली बार ऐसा हुआ।

मेरी तबीयत आज प्रातः काल से ही कुछ खराब थी, मम्मी ने स्कूल जाने से मना तो किया था, दवा तो पहले से ही ले ली थी लेकिन डॉक्टर ने आराम करने की सलाह दी थी, पापा ने प्रार्थनापत्र भेजने को कहा था, परन्तु पढ़ाई खराब होने की चिन्ता से मैने ही उनकी एक नहीं मानी थी। फलस्वरूप कक्षा में ठीक से बैठा नहीं जा रहा था, ठीक से पढ़ाई नहीं कर पा रहा था, दिमाग में बीमारी का जोर था, वह बीमारी से दब चुका था और ढंग से चल नहीं पा रहा था। दिन भर बैठे रह पाना मेरे लिये आसान काम नहीं था, बहुत मुश्किल था। फिर भी जैसे-तैसे दिमाग से काम लेना पड़ रहा था, पढ़ रहा था। जितनी भी देर तक बन पड़ा पढ़ता ही रहा

था, (होमवर्क) गृहकार्य लेता रहा था। जब तबियत ज्यादा बिगड़ने लगी, और बैठ पाना मुश्किल हुआ तब मैने मैडम की प्रमिशन से पीछे-पीछे डैस्कों के बीच में पड़ी हुई एक बैंच पर आराम करना ही ठीक समझा। दवा की खुराक घर से साथ लेकर चला था। पहले खुराक ली थी। कब मुझे नींद ने आ दबोचा, कब छुट्टी हुई ? कब क्लासमेट्स चले गये ? कब चपरासी कमरा बन्द करके चला गया? मुझे बिल्कुल भी मालूम नहीं पड़ा। क्लास मेट्स भी मुझे जगाकर साथ नहीं ले गये। जाते-जाते उन्होनें शायद सोचा होगा कि छुट्टी होते ही मैं भी अपने आप ही घर चला जाऊगां। लेकिन उन बेचारों को दोष देना ठीक नहीं, क्योंकि उन्हें मेरे वहां पर सोने का पता नहीं था। अगर पता भी होता तो क्या किया जा सकता था। यह जरूरी भी नहीं था कि वे मुझे जगाकर अपने साथ ले जाते ही। इस मामले में वे बेचारे बिल्कुल भी दोषी नहीं थे। मैं कितनी देर तक सोता रहा यह भी मालूम नहीं। जब नींद खुली, दिमाग कुछ हल्का हुआ, बीमारी का जोर कुछ ढ़ीला हुआ कमरे में घुप्प अंधेरा छाया हुआ था, कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। अन्धों की तरह टटोल-टटोल कर

काम लेना पड़ रहा था। खिड़कियों, दरवाजों की दरारों में से बाहर झांकने की हिम्मत की तो बाहर काफी रात घिर आयी थी, कमरे के बाहर बरामदे में चांदनी दिखाई दे रही थी। शायद पूनम के आस-पास का कोई दिन होना चाहिए अन्यथा चारों ओर अमावस जैसे अंधेरा होता।

अकेले रहकर कमरे में मुझे बहुत डर-सा महसूस हो रहा है। भूख-प्यास भी सताने लगी है। कमरा बाहर से बन्द है और मैं हर प्रकार से असहाय, बेबस परिन्दे जैसा पिंजरे के पंछी जैसा कमरे का कैदी। लगता है जैसे कि मुझे भी कैद हो गयी है किसी अपराध की। कमरे में सोने के अपराध की। अब तो मेरा एक और भी अपराध यही है कि मैंने अपने डैडी-मम्मी का कहना न मानकर, डॉक्टर की सलाह पर आराम करने से इन्कार किया, उनकी इच्छा के बिना स्कूल चला आया। आप ही सोचिये कि यदि मैं स्कूल न आता तो क्या करता। वार्षिक परीक्षाएं दौड़ती चली आ रही है। ऐसे में स्कूल आना भी जरूरी है। घर पर रहो तो पाठ्यक्रम भी पूरा नहीं हो पाता। इसी पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिये मुझे स्कूल आना ही पड़ा। स्कूल आने का अपराध करना

ही पड़ा जिसका परिणाम अब मैं भुगत रहा हूं। पिंजरे का पंछी होता तो मैं खाने-पीने का सामान मिलने की आशा कर सकता था, अपनी भूख-प्यास मिटने की उम्मीद कर सकता था। लेकिन कमरे में बन्द होने के बाद तो किसी भी प्रकार की आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि मेरा मन इस प्रकार से कमरे में बन्द हो जाना किसी के ध्यान में नहीं थी और किसी के वश में नहीं था। कल स्कूल खुलेगा नहीं, कोई भी पढ़ने आने वाला नहीं क्योंकि अगले दो दिन छुट्टियों के हैं, मौज मस्ती करने के, पिकनिक मनाने के। अब मुझे कोई भी ऐसा उपाय सूझ नहीं रहा है जिससे मैं यहां से बाहर निकल सकूं और अपनी भूख-प्यास पर काबू पा सकूं। भूख-प्यास तो फिर कभी भी मिट सकती है। लेकिन बाहर निकलना आसान काम नहीं लगता। हार कर अंधेरे में गिरता-पड़ता हुआ मैं बिजली के स्विच तक पहुंच पाने में कामयाब हो ही जाता हूं और बत्ती जलाने के काबिल हो जाता हूं। बल्ब के जलते ही सारा कमरा प्रकाश से नहा उठता है। कमरें में चारों और डैस्कों, बैंचों के सिवाय कुछ भी नहीं नजर आता, भयानक सन्नाटा सा छाया हुआ है। जहां दिन के समय चारों और

बच्चों का हल्ला-गुल्ला-सा मचा रहता था। अब वहीं चुप्पी छायी हुई है। बस्तें में से कॉपी पेन निकाल कर सोचना प्रारम्भ किया। जो भी सुझता गया पेन चलता गया और कागज पर पानी की तरह फैलता गया। पृष्ठों की संख्या बढ़ती ही जा रही है, पेन निरन्तर चलता ही जा रहा है बिना रूके और बिना रूके।

घर में मम्मी-डैडी का क्या हाल हो रहा होगा यह समझ नहीं सकता और मेरी समझ से ही बाहर की बात है। अगर मुझे इस बात की और उनके इस हाल की मुझे जरा-सी समझ होती तो मैं उनकी सलाह के बिना कभी भी स्कूल आने का अपराध नहीं करता। मम्मी तो मुझे सुबह ही स्कूल आने से मना कर रही थी। शाम ढ़ले साढ़े चार बजते ही दरवाजे पर मम्मी मेरे घर आने की प्रतीक्षा करते हुए दिखाई दिया करती थी। मेरी बस का इन्तजार तब तक करती रहती थी जब तक कि वह सारे-के-सारे, मोहल्ले के बच्चों को घर तक पंहुचा न देती थी। जब तक मैं अपने कमरें में नहीं पहुंच जाया करता, बस्ता सही-सलामत अपनी जगह नहीं लगा दिया करता, स्कूल की पोशाक बदल नहीं लिया

करता था, मम्मी बाहर दरवाजे पर ही खड़ी रहती और फिर धीरे-धीरे मेरे पास आती, बस्ता अपनी जगह पर पड़ा हुई देखती। मुझे कुर्ता-पायजमा पहने हुए देखती, मेरे बालों में प्यार से हाथ फिराती, सीने से लगा लेती, गोद में बिठाती, दिन भर की पढ़ाई का हाल-चाल पूछती, बात करती, एक गिलास दूध के साथ बिस्किट या केक खिलाती और (होम वर्क) गृहकार्य के लिये बिठा देती। शाम काफी देर तक होम वर्क चलता रहता, जब तक होम वर्क खत्म नहीं हो जाया करता मुझे कभी भी बाहर खेलने की आज्ञा नहीं दी जाती थी। स्कूल का काम पूरा हो जाने के बाद ही जी भर खेलने, कोमिक्स पढ़ने, टेलीविजन देखने, रेडियो सुनने की आजादी दे दी जाती थी, कुछ भी करने के लिये मैं स्वतन्त्र कर दिया जाता था। यहां पर मैं एक बार फिर अपनी उम्र के तीसरे वर्ष में प्रविष्ठ होकर सोचना चाहता हूं। क्योंकि मम्मी की लापरवाही के और अपनी शरारत के कारण मैं एक बार गुम हो गया था, मैं अपने परिवार के साथ एक विवाहोत्सव में शामिल होने के लिये गया था, बाकी सब लोग उस घर के अन्दर कामों में व्यस्त थे और मैं अपने हमउम्र साथियों के साथ खेलने में

मस्त था। जाने कैसे एक बच्चे के हाथ में रंग-बिरंगे गुब्बारे देखते हुए मैं उसके पीछे-पीछे चलता जा रहा था। जब खाने-पीने के लिये तलाश की गई तो मैं नदारद था, कौन मुझे वहां तक वापस लेकर गया, कौन छोड़कर गया, किसने मुझे पहचाना और किस-किसने इतने सारी कार्यवाही में हिस्सा लिया मुझे बिल्कुल भी मालूम नहीं। पूरे मोहल्ले में कोहराम मच गया था, वे सब अपने-अपने काम छोड़कर मुझे ढूंढ़ने में लग गये थे। सबके चेहरे लटक गये थे। मेरे गुम होने का दोषी सब मम्मी को मान रहे थे, उनकी इस लापरवाही पर डांट रहे थे। पूरे शहर में तलाश करने के चार घण्टे के बाद जब मैं उन्हें मिला था तो उनकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा था। उस चार घण्टे की दौड़-धूप के दौरान जाने उन्होनें कितनी ही मन्नतें मानी थीं। उस दिन के बाद आज तक मम्मी मुझे अपनी निगाहों से ज्यादा देर ओझल नहीं होने देती थीं।

अक्सर कभी ऐसा हो जाया करता कि कभी-कभी मैं अपने साथियों के घर चला जाता। मम्मी, डैडी को मेरी तलाश में सभी दोस्तों के यहां भेजती और डेडी घर-घर तलाशते हुए मुझे घर लेकर आते।

मैं हमेशा अपराधियों की तरह सिर को झुकाये चला जाता। घर में घुसते ही मम्मी की डांट पड़ती, कभी-कभार एक-दो थप्पड़ भी रसीद हो जाते इस गुनाह के बदले कि क्यों मैं सबसे पहले घर आने की बजाय किसी भी क्लासमेट के घर चला जाया करता, घर जाने के बाद ही कहीं क्यों नहीं जाता। कहीं भी जाने से पहले मुझे घर चले जाना चाहिए ताकि वे मेरे घर लौटने तक परेशानी की हालत में न रहें, उनकीचिन्ता खत्म हो जाये, व इस बात से निश्विन्त हो जायें कि मैं स्कूल से तो वापस आ ही चूका हूं और अपने किस दोस्त के यहां पर गया हूं। मैं बालक बुद्वि का जो ठहरा, एक दिन थप्पड़ खाकर दूसरे दिन ही फिर भुला देता। एक कान से सुनता और दूसरे से बाहर कर देता। पहले किये गये उस गुनाह के बदले पिटाई होती और फिर मम्मी द्वारा पिटाई के किये गये अपराध के बदले प्यार किया जाता, शान्त मन से समझाया जाता ताकि मैं ऐसी गलती फिर कभी न करूं। बाद में सब कुछ सामान्य हो जाता।

आज जब मैं समय पर घर पंहुच नहीं पाया होऊंगा तो सबसे पहले मम्मी ने स्कूल बस का इन्तजार किया होगा, मुझे बस में से सबसे अन्त में

उतरते हुए न देखकर उसने यही उम्मीद लगाई होगी कि शायद आज भी मैं अपने किसी दोस्त के घर पर चला गया होऊंगा। लेकिन शाम ढ़ले तक मेरे घर पर न पंहुच पाने की हालत में पहले तो मम्मी ने परेशान होकर अन्दर-बाहर बेसब्री से चहलकदमी प्रारम्भ कर दी होगी। काफी देर तक दरवाजे पर मेरा इन्तजार करती रही होगी। मेरी खराब सेहत ने तो पहले से ही उन्हें परेशान करके रखा हुआ था, उनका दिल बार-बार किसी भी अनहोनी को लेकर कांप जाता होगा, घबराहट पल-पल बढ़ रही होगी। रह-रहकर वे मुझे कोसती भी जा रही होंगी कि बार-बार के समझाने-पीटने के बावजूद भी मैं सीधे-सीधे घर क्यों नहीं आ जाया करता। क्या पता मैं अपने किसी दोस्त के यहां पर खेलता, टेलीविजन या वी.सी.आर. देखता या कोमिक्स पढ़ता हुआ मिलूंगा।

उधर डैडी भी घर नहीं लौटे होगें। जैसे ही वे थके-हारे दफतर से वापस आये होगें। मम्मी के बुझे हुए, लटके हुए, रोने को बेताब चेहरे को देखकर डैडी ने मामला जानने-समझने की कोशिश की होगी। लेकिन डैडी के कुछ भी बोलने या पूछने से पहले ही उन्होनें अपनी चिन्ता, मेरी शरारत बता दी होगी।

डैडी को पानी का गिलास, गर्मागर्म चाय पिलाकर आराम करने या कपड़े बदलने या पहले ही अपनी चिन्ता बताकर यही कहा होगा कि मैं अभी तक वापस घर नहीं लौटा हूं, स्कूल में ही हूं या भगवान जाने कहां दफा हो गया हूं कमबख्त कहीं का। जरा-सा भी नहीं सोचता अपनी मां के बारे में। बिल्कुल भी चिन्ता नहीं करता कि मेरे बिना उसकी, उसके बिना मेरी क्या-क्या हालत हो रही होगी उसके बिना मेरा भी बुरा हाल है। उनका दिल कितना कमजोर है यह उसने कभी सोचा ही नहीं। सोचता तो कभी का जल्दी से घर आ जाता कहीं भी अपने किसी भी दोस्त के घर नहीं रूकता।

डैडी के उन्हें हर प्रकार से तसल्ली देने और समझाने, दिल को काबू में रखने की कोशिश की होगी कि वे जरा-सा सब्र से काम लें, धीरज रखें और मेरे बारे में ज्यादा फिक्र न करें सब ठीक हो जायेगा। क्योंकि वे जानती ही है कि कई-कई बार मैं रास्ते में ही रह जाता हूं। अपने आप घर लौट आऊंगा। ऊपर वाला सब कुछ ठीक कर देगा। उसे सबकी ही फिक्र है और वही सबका मालिक है परन्तु मम्मी पर डैडी की किसी भी बात का जरा-सा भी असर

नहीं हो रहा होगा। उन्हें तो तसल्ली नहीं आ रही होगी। वे अपनी ही जिद पर अड़ गई होंगी कि वे मेरी तलाश में इसी वक्त और अभी जायें, मुझे जल्दी से खोज कर लाया जाये, उनकी नजरों के सामने किया जाये ताकि उन्हें सकून मिल सके वरना उनका हार्ट फेल हो जायेगा।

मम्मी की चिन्ता के सामने उनकी किसी भी दलील का असर नहीं हुआ होगा कोई तर्क काम नहीं कर रहा होगा। हार कर डैडी ने भी अनमने ढ़ंग से, बड़ी मुश्किल से स्टैण्ड पर से स्कूटर खींचा होगा, सुस्ती से, मुरझाये दिल से किक मारकर स्टार्ट किया होगा इस उम्मीद के साथ के दोस्तों के घर आना-जाना तो मेरा रोज का ही काम है। अभी नहीं तो थोड़ी देर में वापस आ ही जाऊंगा, किसी भी दोस्त के घर कितनी देर तक रहूंगा भला ? या फिर स्कूटर से बाहर निकलते ही उन्होनें यही सोचा होगा कि दूर कहीं से लौटता हुआ दिखाई दे ही जाऊंगा। मम्मी यूं ही बिना मतलब खुद भी परेशान होती रहती है और उन्हें भी चैन से बैठने नहीं देती जब तक कि मैं उन्हें मिल नहीं जाता। मेरा मिलना तो निश्चित ही है फिर वे बिना मतलब की चिन्ता क्यों करती रहती

है ? वैसे भी दफतर से थके-हारें लौटे हैं, कहीं भी जाने का उनका मुड़ नहीं बन रहा। फिर भी असमंजस में पड़े, मेरी सोच में डुबे, बार-बार डुबते-उतराते तलाश में निकल पड़े होंगे। एक-एक कर उन्होनें मेरे तमाम सहपाठियों और दोस्तों के यहां पर देखा होगा मगर हर बार उन्हें निराशा ही हाथ लगी होगी, चिन्ता ने नहीं छोड़ा होगा। वे सबसे बार-बार यही पूछते फिर रहे होंगे कि उन्होनें मुझे अन्तिम बार कब और कहां देखा था, मैं किसके साथ था मगर वे दोस्त उन्हें कुछ भी बता पाने में नाकामयाब रहे होंगे क्योंकि वे सबके-सब यह नहीं जानते थे कि तबियत ठीक न होने की वजह से ही किसी को भी बताये बिना मैं डैस्कों के पीछे सोने जा रहा था। इस बात को केवल मैडम जानती थी, मैं जानता था या वो ऊपर वाला। बाकी सब इस बात से बेखबर ही थे।

किसी के यहां मुझे न पाकर डैडी की उम्मीदों के पुल टूट चुके होगें। मेरे मिलने की आस पर पानी फिर गया होगा। चिन्ताओं की बाढ़ ने उन्हें घेर ही लिया होगा। उनके मन में तरह-तरह के बुरे विचारों ने घर कर लिया होगा कि कहीं मेरी भी किसी ने फिरौती के लालच में, किसी के बहकावे में अपहरण

तो नहीं कर लिया, कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई क्योंकि आजकल कदम-कदम पर जोखिम सिर उठाये खड़े है, गुण्डागर्दी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। कुछ भी कभी भी हम पर हावी हो सकता है।

मेरी तलाश की सारी कोशिशों को नाकामयाब होते हुए देखकर, सोचकर डैडी भी निराश होकर सोच रहे होगें कि हर जगह तलाश करने के बावजूद भी, कहीं भी न मिल पाने की वजह से वे क्या मुंह लेकर मेरे घर की तरफ रवाना हो सकेंगे, घर पर जा पायेंगे, किस प्रकार स्कूटर खड़ा कर पायेंगे, सिर को झुकाये कमरे में प्रवेश करेंगे, चुपके से सोफे में धंस जायेंगे, बोल नहीं पायेंगे, नजर मिला न पाने के कारण सिर भी नहीं उठा पायेंगे और फिर मम्मी से कह पाने का साहस कैसे जुटा पायेगें के मैं उन्हें कंही भी नहीं मिला, उन्होनें मुझे कहां-कहां नहीं तलाश किया, मेरी खोज में जमीन-आसमान एक कर दिया परन्तु सब व्यर्थ रहा। कहीं भी मेरे मिल पाने की उम्मीद नहीं रही, हर जगह निराशा ही हाथ लगी।

घर से स्कूल की दूरी का अनुमान लगाना तो मुश्किल है। परन्तु फिर भी स्कूल बस हमारे घर से स्कूल पंहुचने में करीब आधे घण्टे का समय ले ही

लेती है। हर 10 मिनिट के अन्तर पर हर मोहल्ले के बच्चों को लाती है। बच्चों के इस उतारने और चढ़ाने के कारण ही काफी समय खर्च हो जाता है। डैडी ने घर जाकर मम्मी को सब कुछ साफ-साफ बता देना ही बेहतर समझा होगा वरना उन पर मेरी गुम होने की बात साफ न बताने, उसे गुप्त रखने का आरोप लग जायेगा। घर पहुंचते-पहुंचते ही पूरी बात बताते-बताते घर में कोहराम-सा मच गया होगा, मोहल्ले भर में बात ऐसे किसी जंगल की आग की तरह फैलने लगी होगी और मोहल्ले वाले शक्कर के एक छोटे-से दाने पर चींटियों की तरह टूट पड़े होगें। सबको मामला समझने की जल्दी लग रही होगी। मम्मी के दिल की हालत कोई भी समझने की कोशिश नहीं कर रहा होगा। सब ही लोग अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग अलाप रहें होगें। तरह-तरह के विचार किये जा रहें होगें, मशविरे दिये जा रहे होंगे। पड़ोसियों के लाख समझाने के बावजूद भी मम्मी बराबर रोये जा रही होंगी और मुझे भला-बुरा कहे जा रही होगी। कोई तुरन्त एफ.आई.आर. दर्ज करवाने की सलाह दे रहा होगा। दूसरा अपनी ही टांग अड़ा रहा होगा। कोई कह रहा होगा कि -

आजकल भ्रष्टाचार बहुत ज्यादा है। उनकी मजबूरी देखकर एफ.आई.आर दर्ज करने की बजाय पुलिस ज्यादा मुंह फाड़ने की कोशिश करेगी। वैसे भी पुलिस नहीं चाहती कि उनके रजिस्टरों में एफ.आई.आर. की प्रविष्टियां बढ़े, वे पहले वाली निबटा लें इतना ही काफी है इसलिये वो लोग बिना एफ.आई.आर. दर्ज किये कार्यवाही करने नहीं चाहेंगे। तुरन्त रिक्शा पर गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले मुनादी करवा देनी चाहिए या आकाशवाणी पर गुमशुदा की तलाश, दूरदर्शन पर मिसिंग पर्सन्स, अखबारों में चित्र प्रकाशित करवाकर उचित या बड़े पुरस्कार के साथ सूचना निकलवा देनी चाहिए ताकि युद्व स्तर पर तलाश करके मेरा पता लगाया जा सके।

लेकिन वे सबके-सब यह नहीं जानते कि इन सबसे कुछ नहीं होने वाला, यह सब करने का कोई फायदा नहीं है। वे मुझे तलाश सकेगें ? इस बात पर मुझे भी शक है। मैं उनके यहां पंहुचने तक जीवित रह भी पाऊंगा या नहीं भगवान ही जानता है। वे मुझे जीवित रहते-रहते तलाश कर भी सकेगें या नहीं ? या मैं उन्हें किस-किस हालत में मिलूंगा कोई नहीं जानता। या जब तक वो मुझे तलाश पायेंगे

तब तक बहुत देर हो चुकी होगी, पिंजरे का पंछी उड़ान भर चुका होगा। खाली पिंजरा उन्हें मुंह चिढ़ायेगा। खाली पिंजरा फिर मिट्टी में मिल जायेगा।

डैडी ने सिर थाम लिया होगा, इतने सारे लोगों के काफी सारे मशविरों ने एक साथ उनकी बुद्वि पर आक्रमण कर दिया होगा। वे पागल हुए जा रहे होंगे और असमंजस में पड़े होंगे, उन्हें कुछ भी सूझ नहीं रहा होगा, मेरी तलाशी का कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा होगा, उम्मीद के सारे रास्ते बन्द हो चुके होंगे। वे कुछ भी कर नहीं पा रहे होगें, किसी भी प्रकार का निर्णय न लेकर सोच नहीं पा रहे होंगे कि वास्तव में ऐसा क्या किया जाय जिससे मै उन्हें सही-सलामत मिल सकूं। ईश्वर को याद करने के सिवा उनके पास केाई दूसरा चारा नहीं बचा होगा। हाथ में घड़ी बंधी होती तो मैं समय देख लेता मगर अब तो अनुमान भी नहीं लगा सकता कि क्या टाईम हुआ है लेकिन अब हम तीनों ही दुख की घड़ी में से गुजर रहें है। हम सबके हाथों पर दुख की घड़ी बंधी हुई है जो न जाने कैसा समय, कितना दुख दिखायेगी, कब तक चलेगी।

अब मुझे बड़े जोरों की भूख भी लग गयी है। प्यास भी जानलेवा होती जा रही है। कण्ठ सूख रहा है। बस्ते के लंच बॉक्स में भी कुछ नहीं बचा है जिससे कुछ देर के लिये गुजारा ही किया जा सके। पेट में चूहों ने उथल-पुथल मचा रखी है। दिमाग फिर से चकराने लगा है। हर चीज में मुझे बढ़ोतरी होती हुई नजर आ रही है। लगता है बल्ब दो हो गये है, पंखे के पर छः हो गये है, स्विच बारह हो गये है, ब्लैक बोर्ड भी रंगीन टेलीविजन की तरह होता जा रहा है। पता नहीं किस प्रकार का नशा सा चढ़ता हुआ जा रहा है, दिमाग बोझिल होता जा रहा है, आंखे खुली रख पाना भी मुश्किल लग रहा है, नींद फिर से सताने लगी है, सोने की इच्छा बलवती होने लगी है। बाहर कहीं पर किसी कुत्ते के रोने की आवाज आ रही है, उस एक कुत्ते के साथ ही दूसरी आवाज भी शामिल होने लगी है। एक आवाज आने लगती है तो दूसरी ही शुरू हो जाती है। कुत्ते बराबर रो रहें है। ये बात कितनी सही है यह मैं नहीं जानता लेकिन सभी लोग यही कहते है कि कुत्तों को जब यमदूत दिखाई देते हैं तो वे रोने लगते है, उनका इस प्रकार से रोना अशुभ माना जाता है। हो सकता

है यही आवाजें मम्मी के कानों तक भी जा रहीं होंगी।

हां, अब एक काम और करता हूं। बस्ते में से एक कापी और निकालता हूं, कुछ पन्ने फाड़ता हूं। फाड़े हुए पन्नों को दुबारा मोड़कर दुगुने छोटे-छोटे हिस्सों में फाड़कर डैस्क पर तश्तरियों की तरह सजा रहा हूं जैसे कि किसी विदाई पार्टी का आयोजन किया जा रहा हो जिसका मेहमान मैं ही हूं। सब पर नाना प्रकार की भोजन सामग्री के रूप में शब्द परोस रहा हूं। कुछ पर लिख रहा हूं बहुत भूख लगी है मम्मी खाना दो। मम्मी खाना दो। मम्मी खाना दो।

सहसा ही मुझे लगने लगा है कि मेरी कक्षा में ब्लैक-बोर्ड के स्थान पर टेलीविजन लग गया है मिसिंग पर्सन्स में पूरे पते के साथ, भरपूर ईनाम सहित मेरा चित्र दिखाया जा रहा है और दर्शकों के मुझे खोजने की अपील की जा रही है। यह देखकर मैं अति प्रसन्नता महसूस कर रहा हूं कि जल्दी ही मुझे तलाश लिया जायेगा, मम्मी डैडी से मुलाकात हो सकेगा। मुझे पाकर वे कितना खुश हो जायेंगे।

डैस्क मुझे अब डायनिंग टेबुल नजर आ रही है। मम्मी-डैडी के बीच में बैठा हुआ मैं खाने के लिये

तैयार हूं। मम्मी ने प्लेटों में खाना परोसकर मेरे सामने कर दिया है। धीरे-धीरे नींद भी मुझ पर घेरा डाल रही है। अब ज्यादा देर तक बैठ पाना, और प्रतीक्षा कर पाना, भूख-प्यास से जूझ पाना मुश्किल हो रहा है। धीरे-धीरे मैं बेहोशी में डूबता चला जा रहा हूं। टेबुल पर से एक-एक कर मैं सामग्री के रूप में शब्द, कागज के टुकड़े उठाता जा रहा हूं, मुंह में रखता जा रहा हूं, चबाता जा रहा हूं और फिर निगलता जा रहा हूं।